



लोकधर्मी नाट्य-परम्परा



# लोक धर्म

## नाट्य-परम्परा

★

डा. रामचन्द्र

★



हिन्दी प्रवांश मुद्राणांय

प्राथम्य—१

कल कला—२



मूल्य पाँच रुपये



- प्रकाशक हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय  
पो० बक्स नं० ७० ज्ञानवादी, वाराणसी-१
- बुद्धक विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि० मानमन्दिर वाराणसी-१

## अनुक्रम

विषय	पृ० सं०
प्रीतिष्ठा	१
उत्तर-भाष्य	
राम-गीता	१७
राम-गीता	२२
सम्पत्ती भाष्य	
माय और स्वात	२८
माय के प्रवर्तक	३८
नये मायकार	४२
नीटकी स्वाय या भगत	४७
गुह्यरात	
मबाई	५१
मनात-बिहार	
जाया (बाया)	५५
गम्भीरा	५८
कीर्तनिवा धंक्रिया	५९
महाराष्ट्र	
उमाया	६१
समित	६६
मित्र	६८
बयावतार	७०
बलिष मारत	
मदाया	७२
बिबि नाटकम् तीत	७६
बीम्पु, कामनकोट्ट	७६
बिबिष प्रहृतन	७८
परिषिष्ट	
कट्युपनी का लल	८४
छाया-भाट्ट	८८

विषय	पृ० सं०
रास,	१०
राजा हरिश्चन्द्र माच का घण्ट	११
माच की प्रमुख बुन	१४
बालमुकुन्द गुड धीर कामुराम उस्ताव की बंदा-तासिका	१५
बन्धनपी रचित एक नीति-नाट्य	१६
प्रकाशित क्वाल	११
बिहारी के रामभीमा-मंथनकी की परम्परा	१०५
लोक-नाट्य संकटन-विधि	१०६
नीटकी सम्बन्धी लोक-कथा	१०१







विश्व सत्य 'नाट्य-शास्त्र' की रचना हुई, उस काल में कृषि-सभ्यता का विस्तार हो रहा था। ग्राम बस रहे थे, सोपों में जातीयता का उदय और धाम-धर्म का विकास हो रहा था। विद्वानों का मत है कि उपसर्ग 'नाट्य शास्त्र' वस्तुतः एक व्यक्ति की रचना नहीं, पूर्ववर्ती प्राचाओं के विचारों का सुसम्बद्ध सम्पादन है। धातुयुग मनुष्यवैद्य की उत्पत्ति की कथा को भी 'नाट्य-शास्त्र' में पूर्ववर्ती विचारों से सम्मिलित; प्रथम किया गया हो। यह कथा ईसा की चौथी पाँचवीं शताब्दी तक बराबर उद्धृत होती रही। 'नाट्य-शास्त्र' के निर्माण की प्राच्यकला तत्कालीन समाज की देखते हुए बकरी की, और सामाजिक पुष्टि के लिये नाट्य को वेद की प्रतिष्ठा देना प्रयोजित था। जबतक नामकी से हमारे समय नाटकों की उत्पत्ति और विकास का कणक-नरक धर्म स्पष्ट हो जाता है और हम इससे निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि—(१) प्राच्यकला ने नाटक को जन्म दिया, (२) यह प्राच्यकला परिस्थिति-जगत् की (जितका धामास तत्कालीन समाज के व्यवस्थापकों को हुआ था और जहाँ से ऐसे साधन की अपेक्षा की जिससे सभी वर्ग के लोगों का सहयोग हो), तथा (३) इसी और धनुषों का संबंध वस्तुतः वर्ग केतना का द्योतक था। नाटक के विकास कथ में संघर्ष की चित्रित करते हुए सभी के दुःख-मुक्त का विरोधक भी नाटक जैसे प्रदर्शन में ही यह अनीत्य प्रतीत हुआ—

बोध्यं स्वभावा भिन्नस्य मुख-मुख्य समन्वितम् ।

सौज्यायमिदोदेतो नाट्याभित्य मिरधीयते ॥

नाटक की उत्पत्ति-सम्बन्धी ग्रन्थ मत भी इस बात के समर्थ में विचारणीय है। बाबुलर रिजरी का मत है कि नाटक की उत्पत्ति मृतक बीरों की पुजा से हुई। मृतक बीरों की धामा की प्रशंसा करने के लिये उन्हीं के चरित्र का नाटकीय अभिनय धनुषपूर्वक प्रारम्भ किया गया। बाबुलर विद्वान के अनुसार कठपुतलियों से नाटक की उत्पत्ति हुई। यह मायता प्राचीन होकर भी विचारणीय है। राजस्थान मारवाड़ वातावरण, बलिन भारत आदि प्रांतों में कठपुतलियों के खेल और फिर पुतलियों की तर्बिरीय परम्परा का उपसर्ग स्वल्प उल्लेखनीय है। बलिन मारवाड़ प्रांतों में कठपुतलियों के नृत्यप्रदर्शन की इस बात को दुष्ट करते हैं। धामा नाटकों से भी संबंध जोड़ने का प्रयत्न किया गया। परिशिष्ट में इस विषय पर ध्यान से विचार दिया गया है। वेदों में संवादात्मक ऋषियों से नाटक की उत्पत्ति का सम्बन्ध जोड़ने पर भारतीय मत नाट्य-शास्त्र के धीरे भी पीले जाता जाता है। ऋग्वेद में लगभग ऐसे प्रतीक हैं जिन्हें समकालीन संवाद के रूप में निश्चय ही स्वीकार दिया जा सकता है। वेद वाद की धवनी विरोध धैर्य में इन्हीं संवादों का नाम होता रहा है। वैदिककाल का अनुमान है कि राजस्थान ऐसे संवाद की भिन्न बनी द्वारा सांस्कृतिक रूप से गाये जाते लोच। प्रो० लेवी ने भी यही मत धार में स्वीकार दिया है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि राजस्थान धीरे धवर्धन की ऋषियों तथा ऋग्वेद के संवाद मुख्य नाट्य धीरे संगीत की विधाभिव्यक्ति है। वेदकालीन जन समुदाय इन विधेयों से परिचित था। ऋषियों के धण्डन से जहाँ-जहाँ रगत मलय की कपरेता भी उपलब्ध होती है। ऋग्वेदकाल में नृत्य-नाटक के प्रभाव वर्तमान की प्राच्यकला नहीं। प्रत्येक युग में वह परम्परा स्वाभाविक रूप से रही है। देवताओं की प्रशंसा करने धवर्धन सांजिक परम्पराओं की साधना के हेतु नृत्य समाज का अनुष्ठानिक धर्म रहा है। नाटक का मूल धीरे वास्तुतः ऐसे नृत्यों के हाव भाव में वर्णन

वस्तु-तत्त्व के बीतार गमित होता है।<sup>१</sup> नाटक का इस प्रकार मूल्य से सम्बन्ध लोक-जनों नाट्य परम्परा का द्योतक है। बंगाल की यात्राएँ इस परम्परा की धारी भी रखा कर रही हैं। लोक के अनुसार वैदिक ऋचाएँ नाट्य-कला के दार्शनिक सुत्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं। दार्शनिकों में प्रायः नव दायका शारदा पीने की दायोजन पसल पकने के बरबत् सिखा जाता है। वह उत्तम का कम कारण कर लेता है। ऋषेय की ऋचाएँ जिसमें नाटक के संसारों का कम निहित है, सम्मन्वय कलन पकने के हेतु किये जाने वाले अनुष्ठानों के बीतार बन पड़ी होनी। लोक ने 'कोरा' जाति के बरोत्तम पर उत्तम करके हुए इस सम्मन्वय में सोमपाल के समय इन्द्र के मुख से कहे जानेवाले धन को स्वस्त कवन का स्वकन बताया है। दुरीहित जिसमें इन्द्र का कम कारण कर लोच की शक्ति का बखान करता है। कोराओं में एक व्यक्ति बरोत्तम देवता का अभिनय करता है और दूसरा गीत गाता है। नाटक का यह दार्शनिक कम धारा भी कतिपय जनजातियों का मरीत्यव धनवा अनुष्ठानिक धाराओं में दृष्टिपोषक होता है। वर्णों के लिये किये जाने-वाले कौटुम्बिकों की दायका विवाह दार्शनिक धारणों पर धनक जातियों में प्रकलित हुए ऐसे धाबार लक्षणपूर्वक अभिनय की कौटि में स्थान पा सकते हैं। उनमें भी पीठों को पृथ में धाते रहने का प्रयास उपलब्ध है।

प्री० विविदा, दौलतनगर तथा पिछेन सीलों के मत से वैदिक ऋचाएँ नाटक के पद्यत्मक रस हैं जिन्हें सुरमित रखा जा सका। इनके मध्य में संभवतः पद्यत्मक रस रहे होंगे, जिन्हें समूहाने रचना कदाचित् उपपन्न नहीं समझा गया ही। इसी मत की पुष्ट करने के लिये कुछ विद्वानों ने वैदिक ऋचाओं की बीरपीठ दायका भीतिपीठ बताने का प्रयत्न भी किया, किन्तु ऐसी सभी बातें धातोचना का विषय बनी हैं।

सामवेद के पीठों को भी नाटक से सम्बन्धित स्वीकार किया जा सकता है। अनुष्ठानिक नृत्यों की परम्परा के प्रमाणों का प्रभाव बड़ी है। ऐसे नृत्यों में लक्षितिक मुद्राओं का प्रचलन बना रहा है। नाटक की उत्पत्ति का बहुत कुछ धाबार यही सामग्री है। भारतीय नाटकों की परम्परा में नृत्य का सम्बन्ध बुद्धिमान है। धावे मत कर इन्हीं नृत्य बीतों में संसारों का प्रवेश नृत्य-नाटकों की उत्पत्ति का कारण हुआ। यों तो नाटकों की प्राचीनता में संदेह नहीं। ईसा की तीन शताब्दी पूर्व रामचन्द्र (सरयुजा) की पद्मिनी में प्रकलित 'लक्ष्मीपति' और 'जीवीपारा' की मुद्राओं में नाटक का दुराणा प्रभाव बका हुआ है। लक्ष्मीपति में पाये गये एक शिलालेख में उस समय के मनोरंजन का मामूली-का बिना विमता है "कुले वरतिपति। इत्यादि नृते। सुवस्त्र एवं धारण (त)" पति का धर्म सम्मन्वय इस प्रकार है कि "वस्त्र धुमिपा को दोल पात्रा उत्तम सम्मन्वी नीत पात्रे जाते हैं और हौरी के बीबार छूटते ह। नने में बनेनी की धाता बने लोच धारण से बने नहीं समझे।" वस्तुतः मनोरंजन की दृष्टि से नाटक का प्रचार सर्वत्र बना रहा है। भारत के 'नाट्य-शास्त्र' की पठन और विविध विधियों की सुविस्तृत योजना यह बताती है कि भारत के पूर्व भारत में नाटकों की परम्परा सभी वर्णों में काफ़ी दायरे में से प्रकलित रही होगी। भारत ने उनका अध्ययन कर सुधबस्त्रित शास्त्र का निर्माण किया, जिससे कि लोक प्रकलित मनोरंजन की स्वच्छता और विविध हुई नदतियों में सुधार होकर एक सुध-बद्धता पा सक। उस मतों पर विस्तार से वर्ण करता यही समीचीन नहीं किन्तु संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि सभी पद्यों का

अपरोक्ष रूप से नाटक की उत्पत्ति के सूत्रों से कहीं अधिक और कहीं कम मात्रा में जुड़े हुए हैं। यही प्याम हिन की बात है कि कृषि-जीवन के आरम्भ होते ही व्यवसाय के छावों में मानव ने अपने मनोरंजन के लिये अनेक साधनों का आविष्कार किया। कुछ साधन समाज के प्रिय विषय बन कर परम्परा के रूप में प्रचलित हो गये। समाज की वही परम्पराएँ हमें नाटक की उत्पत्ति के किसी निश्चय की ओर ले जाने के लिये बाध्य करती हैं। यह तो सर्वनाम्य तथ्य है कि लौकिक कार्यों में नाटक की अभिनय सामग्री (प्रवक्ष्यानुकृतिनिद्रियम्) और वास्तविक कार्यों में पूर्व दृष्टियों की कथाएँ मिलती हैं। नाटक की उत्पत्ति में यह वस्तुएँ धार्य-पीछे होकर योग प्रधान करती हैं। त्रिजाता-जन्म प्रयोग और सारप्रदानों ने नाटक में प्राण प्रसिद्धा की। भरत के पूर्व नाटक का लौकिकता का रूप न रहा हो, यह सम्भव है। यद्यपि यह 'नाट्य-दार्शन' में स्पष्ट परिलक्षित नहीं हुआ, किन्तु उत्पत्ति सम्बन्धी की कथा कथाएँ आरम्भ में ही गई हैं, वे मानव के कृषि-युग की सुबक हैं। जब कि नाटक और निकटवर्ती क्षेत्रों में अनेक युक्त्युक्त बातियाँ बत चुकी थीं और वही एक बार बसाबस हो जाती हैं, वहाँ मनोरंजन के साधन अपने साथ उत्पन्न होते हैं। नाटक इसी तरह सहज उत्पन्न चम्य एवं दृश्य धारणा है जो बाद में क्रमशः नियमबद्ध होती गई। इस रूप में लौकिकता और साहित्यिक वे दोनों भिन्न नाट्य परम्पराएँ स्वतंत्र रूप से विकसित हुईं। आरम्भ में यह भेद न था कि वह उसे पूर्व लोकोग्मुदी धनाने के लिये सभी बर्तों का सहयोग धर्यसित हुआ था। इसीसे वे संक्रमण का रूपक सम्भवतः एक सुसंघत 'प्रयोग' है, यह कहना अनुचित न होगा।

: २ :

हर्ष के परचम् (७ वीं प्रतापी) कुछ प्रतापियों ऐसी बीती कि प्रत्येक प्रान्त एक-दूसरे के संघर्ष से बंघित हो गये। अतस्वरूप मनोरंजन के साधनों का सर्व-सामान्य रूप बिच्छू पतित हो गया और लौकिक साधन करने-करने ही से नाना स्तरों में धनपने गये। साहित्य दृष्टि से लौकिक भावनाओं में समागता होती हुए भी उन साधनों में रूप-भिन्नता उत्पन्न हुई। कालान्तर में वे ही साधन बढ़ हो कर परम्परा की बानी बन गये।

मध्ययुग की परिस्थितियों का अध्ययन करने से यह निश्चित होता कि अन्तिमरुद्ध प्राचीनता ने नाटक की उस परम्परा को भी राक्षस्य के अभाव में मुराता गई थी और वह परम्परा भी साधारण जन में उद्देश्यबिहीन होकर मर चुकी थी और एक साथ बीधित कर दिया। कृष्ण-जीता की आयोग्येयकारिणी विविधता रात्र-वर्षाओं और जन-साधारण के बीच पर एक तान प्रतिफलित हुई। भागवत के वधनु रत्न की कथाएँ अभिनय का सहारा बाकर लौकिक-जीवन की अभिव्यक्ति के स्तरों से परम्परागत नाट्य-धर्मी के भ्रमप्राप्त की अभिव्यक्ति हुई। उच्च रात्र के जीवन का अभिनय रात्रभक्ति धारा की प्रस्था से प्रफुल्लित हुआ। इस प्रकार कालान्तर में 'रात्रजीता' और 'रात्र जीता' या लौकिकता नाट्य-परम्पराएँ विकसित हुईं। इसी नाटकों के विकास की शृङ्खला में मध्ययुग की इन धीवृद्धि का महत्वपूर्ण योग है।

अब वही समस्यार्थी ने भारतीय संस्कृति की काफ़ी मुश्किल पहुँचाया और उन्होंने नाटक के विकास में बाधाएँ उत्पन्न कीं। हीरक इसी समय गुरुर बेगम आताम,

बंगाल और बिहार तथा निकटवर्ती मिथिला में बैजवर्णों के रंगमंच पर अनेक नाटक होते गये जो प्रायः भी उपलब्ध हैं। इतिहास लेखकों का मत है कि "जस समय भी (मध्यकाल) मुसलमानी प्रभाव से दूर इतिहास में संस्कृत नाटकों की रचना और अभिनय कला का प्रचार बराबर बना रहा। ऐसे स्थलों में जहाँ मुसलमानी प्रभाव विघ्न था उच्च धर्मी के नाट्य-साहित्य और अभिनय-कला का पतन ही गया। केवल गाँवों में क्यक के कुछ हीन लोगों का प्रचार बना रहा।"<sup>१</sup>

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या संस्कृत के या उच्चवर्णों के नाटकों का विकारी रूप लोकवर्गी नाटकों में निहित हुआ या लोक-नाटकों की अपनी स्वतंत्र परम्परा ही थी। भया की दृष्टि से जो भेद संस्कृत या उच्चवर्णों की भाषा और लोक प्रचलित कोशियों में रहा है वही भेद हमें संस्कृत नाटकों पर या उच्च कोटि के नाटकों एवं लोकनाट्यों में स्वीकार करना चाहिये। जहाँ लोकनाट्य संस्कृत नाटकों के निकट प्राये हैं वहाँ वे प्रबल ही नागरिकता से प्रभावित हुए हैं। वृत्ति लोकनाट्य लोकवर्गी रहे हैं अतः राजबरादारी का धारण उनके लिये संस्कृत नाटकों की तरह अप्रकृत नहीं था। इसलिये धारण के अभाव में उच्चकोटि की नाट्य-कला का ह्रास हो गया और लोक-नाट्य किरने ही उत्थान और पतन के बाद भी गाँवों में प्रायः भी बने हुए हैं। हेनेमनाचदास के अनुसार संस्कृत नाटकों की परम्परा का अन्तिम नाटक रामानन्द राम (अवतार वत्सल) का था जो अजयपुरी के मन्दिर में श्री अष्टावक्र की आज्ञा से होता गया था। यह सम्भव है कि यही अन्तिम नाटक न होया। अन्य प्राचीनों में इस प्रकार की नायक-परम्परा से संबंधित नाटक तब तक प्रचलित ही मौजूद रहे होंगे जब तक कि राजाओं का व्यवहार उन पर रहा। इस परम्परा के ठीक विपरीत लौकिक नाटक (लोकवर्गी) ह जहाँ राजाओं का प्रभाव और सीमित साधनों में अत्युत्त अभिव्यक्ति का कौशल विद्यमान है। यही कारण है कि लोगों ने अपने प्रचार के साधनों में एक साधन नाटक भी माना है। राजाओं ने लौकिक परम्परा के विरुद्ध जहाँ-तहाँ अपने मत विरोध करने लगे हैं कि लोगों की इतिहास-नाटकों की ओर कक्षा बढ़ रही थी। मध्यकालीन नाटकों में ऐसे अनेक नाटकों का पता लगा है जो भारत की नाट्य रीतियों पर घरे नहीं उतरते। उनमें पद्यत्मक संवाचों का आश्रय और रामायण तथा महाभारत की कथाओं का आशीष पद्धति से विस्तार पाया जाता है। न उनमें पात्र-अवयव के संकेत हैं न चरित्र चित्रण की कठान। यति और अभिनय का कौशल भी नकारा। जिसे उत्कृष्ट नाट्य कला कहा जाता है उसका कोई रूप उसमें नहीं है। 'वसिष्ठी हरच' (विद्यापति), 'हनुमान् नाटक' (हरचरण पंजाबी) 'प्रवीर अन्वीर्य' (पद्मपति) 'सकुलभा' (निवाज कवि), 'विजयाया प्रपञ्च' (देव) 'भाववान्न काल-कल्याण' (आसम) आदि ऐसे ही कुछ नाटक हैं। माधेयु हरिश्चन्द्र के नाटकों में लोक-नाट्यों का प्रभाव पाया जाता है। 'अज्ञात' में 'रात' का और 'नीलदेवी' में 'स्वांग' का प्रभाव है (आ० हि० ला० २३२) यद्यपि यह प्रभाव अनेक पक्षों परा हुआ नहीं है। रंगों का तो लोगों पर प्रबल प्रसर होता था। डा० सोमनाथ न अपने ग्रन्थ 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास' में सोमनाथ मनीष की एक कृतकवी (१८८५) का आशय उद्धृत किया है जो इस तरह है —

“घाज शहर में घाज किस्म के लीग घाये हैं जो एक तरों घमाज के साथ नकलें करते हैं, घीर नगमो-साज के साथ शोबदे बिसाले हैं। जाब घीर नकल में है उस्ताद हैं, लुशमाबाज हैं। हमारे इस्तिलाह में इनको भयतबाज कहते हैं। कमी नर्व कमी घीरल घीर कमी बच्चे की नकल करते हैं, कमी परेशान बात-सम्प्राप्ती बन जाते हैं कमी मुसलमान, कमी काश्मीर का भेष बनाते हैं, घीर कमी किरमी बन जाते हैं। कमी बहकानी घीरल घीर कमी नर्व की नकल करते हैं, कमी बाड़ी मुड़ा कर पिच की सुरत में नजर आते हैं। कमी मुगलों की शकल बना लेते हैं, कमी मुलाम बन जाते हैं कमी बच्चा की हुनिया बना लेते हैं जिसका बच्चा बापा की गोद में रोता है। कमी हिन बन जाते हैं, कमी पदी। परज हर कीम का जलवा बिसाले हैं, घीर हर लख के इन्हा बनाने से काम लेते हैं।”

रिजल में जो कुछ बैसा वह इसी प्रकार का था। ऐसे अभिनयों से प्रभावित होकर यदि मनमौजी लेखकों ने साधारण कौटिक के नाटक लिखे हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। सही माने में उन्होंने जन-सचिको समझ कर जनवादी अभिव्यक्ति के प्रयोग किये थे और उनके ये प्रयोग उस समय सफल हुए।

भारतेन्दु की ने नाटक के उत्पादन के लिये पर्याप्त प्रयत्न किये और यहाँ तक कि उनके प्रयत्न और प्रयोग कुछ धर्मों में इसी प्रकार के थे। उनके समय में उत्तर भारत के रास और रामलीला के मंच कठिनायी हो गये थे। उधर बंगाल की ‘जाबा’ और मिथिला के ‘कीर्तनिया’ ने उन्हें प्रेरणा दी। लोकनाट्यों में कला का जो प्रभाव उन्हें खटका वह तो एक ओर रहा, पर उन्हें देखते हुए एक राष्ट्रीय मंच की आवश्यकता का उन्होंने तीव्रतम अनुभव किया। इसलिये लोकनाट्यों की पद्यलक्ष संवाद लीली एवं ग्राम्य माध्य पद्धतियों के समन्वय की लोकसभ के अनुसार प्रदर्शन का विषय बनाते हुए उन्होंने मंच की स्थापना की। इस काम में उन्होंने अपने निष्ठा, परिश्रमों प्रियों सबको समेटा और अपने समय में अनेक नीराशिक, ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों की रचना कर उनका अभिनय कराया किन्तु उनके प्रयत्न प्रायः बलकर असफल हुए। भारतीय सिनेट्रिकल कंपनी ४ मुकामले में है एक सज्जता हिन्दी मंच की स्थापना नहीं कर सके। उनके समय जो लोकनाट्य प्रकलित थे वे ही चलते ही रहे, पर जिस काई को है प्रथम समन्वयवादी प्रयोगों से भरना चाहते थे उसमें सफल न हो सके। उनके पञ्चान् हिन्दी नाटकों की बारा अंग्रेजी के प्रभावपूर्ण लोकसभी नाट्यों के संपर्ध से एकदम हट गई। अब नाटकों में पद्य का प्रयोग पद्यार्थवादी बचोड़ी कर कला बनने लगा। संयोग में लोक-नाटकों की सांत्विकता हिन्दी को धूँ भर सकी और बरे हो गई। कुत्रिज उपायों से मंच की कक्षा और नाटकों के अभिनय में कठिनाता का विकास हुआ। कलकत्ता और आष्टाकम्परी का प्रभाव बढ़ा। इस तरह सभी लक्ष्य के मनोरंजन का साधन नाटक का विरोध की वस्तु बन गया और नाटक की है ही धाराएँ लोक-नाटक और उच्च पद्य बरक, जहाँ तरह प्रत्य-प्रत्य चलनी गई। इसमें लोकसभी परम्परा का ह्रास नहीं हुआ। घाज की घाँबी में मंच घाने-हंग में लक्ष्य है। उन पर समय-समय पर घनर प्रकार के मनोरंजन होते हैं। उनमें दीवित्य नहीं आया। गुलतर के घापापी मूर्छी में इस प्रकार के लोकनाट्यों का विस्तार से बरिचय दिया गया है। यहाँ संयोग में लोक की प्रभावित करने की समझा रखनेवाले इन नाटकी के विषय में कुछ अनुसंधानें जानना आवश्यक प्रतीत होता है।

लोक-नाट्य की शिरोवृत्ता उसके लोकधर्मी स्वल्प में निहित है। लोक-जीवन से उसका घन-धर्म का भाग है। बाह्याङ्गमयी और नागरिक सुसंस्कृत चेष्टाओं के बिना लोक के मनोमार्गी और प्रतिक्रियाओं का स्वतन्त्र विकास केवल लोकधर्मी नाट्यमयी में ही सम्भव है। लोकधर्मी का एक स्वतन्त्र घन होने के कारण लोक-जीवन में इन नाटकों का अपना विशेष आकर्षण है। शास्त्रीय नाट्य पद्धति की धनमिश्रता मंच निर्माण की विधिवत् प्रकृति का प्रकाश एवं कलात्मक सुखलताओं के प्रभाव में भी नाट्य की इस सीली की प्रकृति अस्तित्व बनाये रखने का पूरा व्यवहार समाज में निहित। अनु-उत्सर्ग, फलन कट जाने के बाद प्रान्त के लोगों एवं विविध व्यवहारों पर प्रत्येक प्रान्त में इन नाटकों के प्रदर्शन प्रामाण्य क्षेत्रों में देखे जाते हैं। भारत में सम्भवतः इन्हीं प्रदर्शनों की देख कर नाट्य-सार्वभौम के बीचों-बीच धर्म्याय में लोकधर्मी नाट्य प्रवृत्तियों की और संकेत किया है। यद्यपि संस्कृत में लोकपरक नाट्यों के उदाहरण नहीं मिलते हैं तथापि समकाल, व्यायोग, प्रहसन, भाषा, सङ्कट प्रादि प्रकारों को लोक धर्मी के नाट्य रूपक कहा जा सकता है। 'रघुपथ' में इन पर संक्षेप में वर्णन की गई है। अपरोक्ष रूप से लोकपरक नाट्य धर्मी ने संस्कृत के नाटकों को भी प्रभावित किया है जिसके प्रमाण उपलब्ध हैं।

समाज की विकसित परम्परा में ऐसे नाट्य-कर्मों का उद्भव मनोरंजन के लिये हुआ जिसमें सभी वर्ग के लोगों ने हाथ बँटाया। नगरों के अस्पताल और राजकीय दरबारों के आकर्षण ने उच्च वर्ग के लिये एक सुसंस्कृत नाट्य परम्परा की भाव दिया, जिससे प्रस्था तो इन्हीं लोक-नाट्यों से ग्रहण की पर वेय और धारमा को भूमि की उपा से ऊपर उठा लिया। मध्यकाल में जब नागरिकों के वर्ग का हास हुआ और नाटक समाज के सीमित क्षेत्र के मनोविनोद और विज्ञान का साधन बन गया तब यही लोक-नाट्य परम्परा पीढ़ों के जीवन में रस सुष्टि का माध्यम बनी रही। बंगाल, बिहार, कर्नाटक, कुछ मालवा राजस्थान और राज्य महाराष्ट्र प्रायः और सुदूर दक्षिणवर्ती प्रायों में अपनी-अपनी विशेषताओं से विभूषित लोक-नाट्यों का निरन्तर उपयोग होता रहा है। ये नाटक लोक भावना की अनुकरण-मूलक प्रवृत्तियों कल्पनाओं और विद्यात्मक अभि व्यक्तियों के सहज प्रतिक्रिया हैं। अजिनय के अनगढ़ स्वरूप और बाकी के स्वाभाविक प्रवाह में परम्परा से प्रेरित आस्था के वर्णन होते हैं। लोकबलांगत विद्यात्मक अनुष्ठानिक एवं लौकिक पूजा-अर्चना समाज की अथवा भावनाओं की एक व्यंजना, प्रकृतित आराधनों कलाओं और सामूहिक मृत्यु-गीतों में अवलम्ब प्रस्ताह और वर्णन तथा बँधी-बँधायी आकाशनी में लोकप्रसन्न यह नाट्यशाली विद्यमान हुई। भांड, मर्कत नद और नक्कालों ने लोक गीतों में छोटे-छोटे ग्रहणों की जीवित रखा। विद्याह उत्तर्कों के अथवा नर अनेक आशियों में निष्ठा आरात विद्या होन पर स्वांग बनती है। चौबनी रात में आलक-आलिकार्थ परम्परागत अजिनय प्रस्तुत करते हैं। मनार्जन का व्यो हो अथवा विद्या नहीं कि लोकवर्द्धि अनुकरणमूलक प्रवृत्तियों के मनोनुकूल साधन बूँद सती है।

पार्थी के लिखोर धीर युवकों में कमी-कमी भीतिक घटनाओं के आधार पर प्रहसन उतारने की होड़-सी लग जाती है। प्राचीनकाल से यही प्रवृत्ति बनी आ रही है। मध्यकाल में साहित्य के क्षेत्रों में यह अभिक पनपी धीर गाँवों में बड़ हो गई। लोक-कथाओं प्रबलानों धीर गीतों की तरह अनेक छोटे-छोटे प्रहसन न मान्य कद से बने आ रहे हैं। राजा-महाराजाओं के दरबार धीर वीरों के प्रसंग बीर-भूषा की भावना के साथ परम्परा की बानी बनकर उपलब्ध हैं। गवीन जङ्गलवाले भी इनकी पकड़ से परे नहीं रहें। 'बीरों' व तापी नामक क्रांतीवादी इतिहासकार ने ऐसे समाजों का प्रलोभन किया है। जतने 'एथिपेटिक जर्मन' को जिस्म बाइस (गई वीरिज) से एक ऐसा ही प्रहसन अपने प्रेम में उद्धृत किया। जिसे जानकारी के लिये यहाँ प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा।

“ दृश्य में कचहरी बिछाई गई है जिसमें यूरोपियन मैजिस्ट्रेट बड़े हुए हैं। अभिनेताओं में से एक, कोल डीपी सहित चंचली बेड-भूषा में लीची बजाते धीर अपने मुँहों में चाबुट मारते हुए सामने आता है। तब किसी घरवाले का बीबी बीबी लाया जाता है। किन्तु जब क्योंकि वह एक नवयुवती भारतीय महिला, जो पचाह प्रतीत होती है के साथ व्यस्त रहता है प्रान नहीं होता। जबकि घरवाहों चुनो जा रही हैं, वह कमबख्ती से बेके बिना बिना किसी वाय वात की धीर ध्यान दिये हुए नहीं रहता धीर परिधान के प्रति उदासीन रहता है। अंत में जब का दिव्यमतपार आता है जो अपने मौलिक के पास जा कर धीर हाथ बीड़ कर, आरम्भपूर्वक धीर बिलम्बता के साथ, बीमे स्वर में उससे कहता है 'साहिब टिकिन तंवार है'। सुरत जब जाने के लिये उठ पड़ा होता है। घरालत के कर्मचारी उससे पुछते हैं कि बीबी का क्या होगा ? नवयुवक तिर्बितियन कमरे के बाहर आते समय पड़ी के बल धूमती हुए बिस्ता कर कहता है 'बी बंम, फासी'।

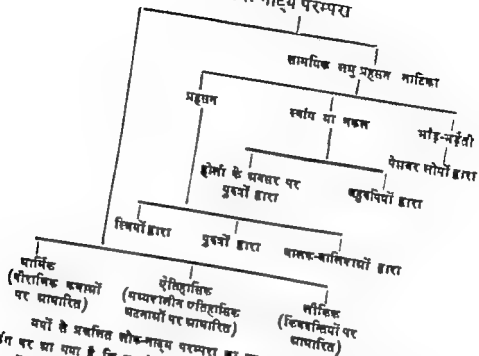
तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया ऐसे छोटे लोक परक प्रहसनों में लूब हालकी है। बीबी की चुलकर चिस्तिगी जड़ाई जाती है। हर बात हास्य ध्यंग बर्न धीर राजनीति में प्रतली-मुलशानी अन्त में चुनाम त्रिबित तक पहुँचती है। स्मृत लोकसर्वी माटप परम्परा के दो कव हैं—(१) सामयिक लघु प्रहसन तथा (२) मध्यकाल में आरम्भ होकर प्रारम्भिक तक अभिनेय पीति-अम्ब।

दूसरी धनी के माटपों की कथावास्तु धार्मिक ऐतिहासिक और लौकिक है। राम चरित मानस भीमङ्गायका धीर महाभारत की कथाओं ने धार्मिक माटपों का ताना-बाना बुना है। ऐतिहासिक कथाओं प्राम् मध्यकाल की है धीर लौकिक कथाएँ पूर्णतः लोक प्रचलित परम्परागत कथाओं पर आधारित हैं। अनेक लोक-माटप ऐसे हैं जिसका कथान सानकी से प्राम् सभी निज होते हैं। इतना होना हुए भी उनमें प्रति लोकचर्चित लौकिक भी मिश्रित नहीं होती। यहाँ से लोग उनका अभिनेय देखते आ रहे हैं। यही बात ऐतिहासिक धीर लौकिक कथानकों पर आधारित लोक-माटपों पर धारोचिन की जा सकती है। लोकसर्वी माटप परम्परा के अन्तर्गत आने वाले माटप प्रकारों का विभाजन निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है —

१. लिखोर माटप का इतिहास गाँव व तापी (पन्ना ३० मध्यमादर बाणेश्वर)

पृ० २९-३०।

# लोकधर्मी नाट्य परम्परा



यहाँ से प्रकृत लोक-नाट्य परम्परा का अपना स्वल्प विस्तृत हो कर एक ऐसे ढंग पर आ गया है कि उसको कुछ कहा जा सकता है। इसलिये उसकी अपनी विशेषताएँ भी कम-ज्यादा उभर सकी हैं। समुह नाटिकाओं अपना ग्रहणों का रूप यद्यपि ध्वस्त नहीं है परन्तु प्राचीन ढंग के नाट्यों में बहुत कुछ व्यवस्थित रूप दिखाई देता है। उनकी यद्यन विषयगत है—जिसमें धर्मिक नृत्य और पीठ सीतों का संयोजित रूप मिलता है। सार्व-सम्मत धर्मिक के चारों ओर यहाँ में 'साधारण' और 'सांयनिक' की ओर कर 'सांयनिक' और 'सांयनिक' का प्राधान्य लोक-नाट्यों में दृश्य है। तबसे नैतन विशेषताओं पर निम्न रूप से विचार किया जा सकता है।

1. लोक-नाटकों की भाषा काव्यमयी होती है। जो कि वे नाटक सामूहिक धर्मिक के साधन हैं और पद्यात्मक संवाहों द्वारा समूह की स्वयं-प्रतिभाओं को ग्रहण का को सामर्थ्य रखती हैं इसलिये इनमें यद्य का प्रभाव कम ही होता है। यद्य का प्रभाव नाटकों के हास्यात्मक धर्मिक अपना इतिवृत्तात्मक प्रभावों में किया जाता है। एका गद्य की प्रायः यद्यत्मक होता है यहाँ यद्यों की लक्ष्मि एक दूसरे से जुड़ी हुई इत्यति से प्राये बढ़ती है। यद्य-कथ संवाहों की परम्परा मध्य काल के पूर्व से निरन्तर चली आ रही है। लोक में उसका प्रभाव परम्परा से जीवित होता जाता आया है। इसीलिये लोक-नाट्य पर उसकी धारा प्रबल पड़ती है। प्रायः देखा जाता है कि यद्य-कथ संवाहों में कथन की बारीकियाँ वर्णन उसी भाँति पकड़ते हैं जिस तरह धर्मिकता कथाकारों की रचनाओं के दृश्य भाषा के माध्यम से प्रकट होते हैं। एते धर्मिक धर्म इन नाटकों में होते हैं जो लोकधर्मों की पुस्तकों में पाये जाते हैं और लोकधर्मों की प्रकृति धर्म-पौराणिक में प्रकट होते हैं। उन धर्मों में साधारणीकरण की सम्पूर्ण समता



होती है और वे बड़े सुन्दर एवं नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किये जाते हैं। भगवान् श्री कृष्ण की कृष्टि से पद्य का आधिक्य नाटकों के पुरानेपन का चोख है जो न केवल अपने तक ही सीमित रहा अपितु संस्कृत-नाट्य-परम्परा को भी प्रभावित करने में सफल हुआ। 'जरबा या बाब' के नाम से जो लिखित रचनाएँ मिलती हैं उनमें ऐसे ही पद्यत्मक संवादों का बाहुल्य है। मरहूरि (जब और बिद्या को बाब), दुलारे कवि (तीने लोहे को समरो या जरबा) आदि ने कुछ प्रयोग किये थे, जिनकी उपयोगिता स्वयं भारतेन्दु ने भी समझी और १५ फरवरी और १३ नवम्बर, १८७३ ई० के 'हरिद्वार मगजीन' के अंकों में ऐसे ही नाटकीय संवादों को पद्य रूप में प्रकाशित भी किया।

## २ कथानक

लोकनाटकों में कथानक जता कि बताया गया अधिकतर पौराणिक, ऐतिहासिक और बहुत कम सामाजिक होते हैं। कथानकों के प्रायः दो रूप सर्वत्र मिलते हैं। प्रथम कोटि में उन कथानकों का स्थान है जो मुख्य कथा के सहारे बेर रात तक चलते रहते हैं। कथानक के धारावाही नहीं होते पर छोटे-छोटे प्रसंगों के द्वारा उनमें विस्तार होता जाता है। दूसरी कोटि में साधु ग्रहणों की महत्त्व दिया जा सकता है। लोकपरक अनुभूति और मनोरंजन का स्वरूप स्वयं इनमें उपलब्ध है। इन ग्रहणों को किसी भी समय घानों में सम्मिलित या मनोरंजन के अन्तर्गत कर देया जा सकता है।

लोक नाटकों के कथानकों में एक प्रकार की कलावत का प्रभाव पाया जाता है। लोककृति, प्रिय कौशल के परिष्कृत स्तर तक पहुँची नहीं होती। फिर कड़ स्वर्णों के प्रति धीरे-धीरे वर्णक और अनियेता दोनों में एक ऐसा समझौता ही जाता है कि बिना कथानक की कलावत के भी कथा अपनी सहज गति से चलती जाती है। पौराणिक कथानकों के प्रति भट्टा और ऐतिहासिक कथानकों के प्रति कुतूहल की भावना इस प्रभाव का अनुभव नहीं होने देनी। जगदीशचन्द्र माधुर के अर्थों में "लोक नाटकों में कथानक प्रायः डीला-डाला होता है और पूर्वाह्न में जितनी विलम्बित गति से कथा बढ़ती है उत्तरार्द्ध में पतनी ही श्रुत और अस्वाभाविक गति से घटनाओं को डकेता जाता है। किन्तु इससे अधिक कलात्मक वे लोक-नाट्य होते हैं जिनमें घटनाओं के प्रिय-विधान के स्थान पर जीवन की शीर्षकों की लड़ी होती है अथवा जिनमें पौराणिक और नाटिक कथाओं का पूर्व परिचित संबंध होता है। जो भी हो, लोक-रंगमंच के दर्शक कथानक के अन्तर्गतपूर्ण प्रसंग अथवा घटनाओं के अनुगृह्यपूर्ण उद्घाटन की अपेक्षा नहीं करते। वे प्रायः खुद ही से परिचित होते हैं और इसलिये कथा से प्राप्त मनोरंजन उनका लक्ष्य नहीं होता बल्कि रतानुभूति द्वारा प्राप्त सुख।

## ३ पात्र

लोकनाट्यों के पात्र अपनी विशेषताओं से विभूजित होते हैं। वे प्रायः जाने पहिचाने एवं प्रचलित समाजगुण प्रवृत्तियों के वाहक होते हैं। सुलत बड्डा, लोन कुर्वी गति डोवी साधु बड्डा औरत आदि ऐसे पात्र होते हैं। पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथानकों में भी इन पात्रों की प्रवृत्तियाँ स्थानीय रंगों सहित व्यक्त होती हैं जिनमें काम और स्थान भेद का ध्यान नहीं रखा जाता। राजा रामचन्द्र लंका जाने समय मंच पर चार चरकर लगा लेते हैं अथवा कुछ जकरी काम होतो मंच छोड़ कर फिर उभर रिक्त हो जाते हैं। पात्रों की अभिनय की पूरी स्वतंत्रता होती है। प्रायः निर्धारित

संसारों के प्रतिरिक्त प्रतिभाषासी पात्र धपनी धोर से कड़ियाँ बीड़ कर रसतुष्टि करने में बीध देते हैं।

पात्र धपनी परम्परागत सीसी में मंच पर अभिनय करते हैं किन्तु कोई भी पदार्थ बाढ़ी सीसी धपवाने का प्रयत्न नहीं करता। यही तक कि किस पीत के साथ कैसा अभिनय, संवाद का गुण होना यह कड़ हो गया है। परिभाषा: लोक-नाटकों का सम्पूर्ण आगम कलकी परम्परागत सीसी में निहित है। अर्थकथन तड़क-मड़क की धपसा उसके काव्य मंच में रस लेते हैं। चूंकि पात्र से उनका सीधा सम्बन्ध होता है और वे बड़े गुरु-शरदुभ आगते हैं, इतिनिधे उनके अभिनय को कला की दृष्टि से नहीं अपितु मनोरंजन की दृष्टि से देखते हैं।

## ४ चरित्र चित्रण

लोकनाटकों में चरित्र चित्रण का प्रश्न कठिन नहीं है। यों ही परम्परागत नाटकों के चरित्र बाने-बहिकाने होते हैं। उनकी चरित्रगत विशेषताओं को लोकधर्मों मंच पर मोटे रूप में प्रस्तुत किया जाता है। शुभ्र मनोरंकार्य विविधता और मुर्वरुक्त भावस को सुनेवाने लक्ष्यों का प्रत्येक धनमें ध्याय होता है। 'संसारों के आध्याम से को कुछ व्यक्त किया जाता है उसके प्रतिरिक्त पात्रों की वेधमूया और चरित्र की दृष्टि से हावभाव पर ही चित्रण अधिक निर्भर है। सिधियों के धनिमन के लिये पुष्ट ही वेध धारण करती हैं। धत सिधियों के चरित्र-चित्रण में जातिध की कपी देखी जाती है। विदु धक धपने हाक-चरिहात से चरित्र की आन्तरिक धलों पर प्रकाश डालता है। नम्यक को विवेधताओं की प्रकट करने की धपेसा उसके धारा कलनायक और धम्य धात्रों की विद्वत्तिध धधिक धपने धध से प्रस्तुत की जाती है।

## ५ लोकवादी का समावेध

लोक-विधात, परम्परागत भाग्यताध, पीठि-रिधात धमिधात धाधि लोकधर्मों नाटकों में कबाधक, संवाद, सीध और धनिमन के साथ धाधक है। धाधनिकता इनमें सीध धाना धरो ठुई है। लोकिक धाधारी के साथ लोक-धावा की सम्पति-पीत, धनार्ध मुहावधों और स्वाधीय धोनिधों के धम्यात्मक प्रधीम मंच पर धात्रों धारा प्रकट होते हैं। धाहे धाधा भी लोकनाट्य हो, मंच पर बहु परम्परा की धात्री लेकर ही प्रकटरित होता है। इतिनिधे धते लोक-विधात का धाधरररिध धाध है। धमधुमन, धोधमन्य और लोकधर्मों धाधों का धनमें धुर्नन धधधध ठुसा है। धाध संधाधों के धोध में धाही भी धनय धाध है लोकधीधों की कड़ियाँ धाधी जाती हैं। इतिनिधे धन, का मधध धत धाध है।

## ६ रूप-धोजना

रूप-धोजना की लोकधरक नाटकों में स्वाध धारण करने में धध में स्वाधर किया धा है। धतके लिये लम्हे-धीड़े धतधन, धनधर धकधीने धधों की धाध धकता नहीं होती। धुधतिध, धोधर, धोयन, धाधन धाधि धेधी धनक के धाधधों से मुहे धोधर धधका मुधीधे सधा धरधध रधीन धध धारण कर धाध मंच पर प्रवेध करती हैं। धाही धोध में चरित्र को धधन करने के लिये—निधररित मुधीधे धधिक धधतिध है। धधनी लोक-नाटकों में धाध रिधात धाध नहीं निधता। सिधियों का धध

धारण करते समय घू घट में अपनी मूँछ छिपा कर पुण्य पात्र उन सभी धर्तकारों को धारण करता है जो बाहर से दिखाई पड़ते हैं।

### ॥ संगीत-योजना

संगीत लोकनाट्यों की शक्ति है। डोलक, त्राँस मञ्जीरे, करताल, बिकारा बाँसुरी, हारमोनियम पेपा आदि बाद्यों के प्रतिरिक्त हर स्वान के अपने बाद्यों को उसमें स्वान प्राप्त है। ग्रामीण 'आर्चेस्ट्रा' के सहारे अभिनेता अपने कंड का साधुयं बरसाने का प्रयत्न करता है। 'आर्च' में डोलक और मञ्जीरी में मन्त्रों के बिना काम नहीं चलता। संगीत की होती आधुनिकता से प्रभावित होती है। ऊँची आवाज और बाद्यों की साधुहिन पर जोरदार ध्वनि, बसकों और नाटक करनेवालों दोनों को प्रभावित करती है। संवादों के बीच—बिना बाद्य की सहायता में लुप्त हो जाती है। धारण से ले कर प्राप्त तक बाद्य बजते रहते हैं।

### ८ हास्य

हास्य लोकनाट्यों का प्राण है। विद्वत्क (या रंगतो) अपने प्रति नाटकीय हास-भाव द्वारा जोरदार संवादों से दूर तक बैठे हुए धारा जनसमूह का मन मुग्ध करने में सक्षम होता है। विद्वत्क को नाटक के किसी भी प्रसंग में प्रवेश करने की स्वतंत्रता है। वह रायच का मजाक उड़ाता है और राम का भी परिहास करता है। वह महान राजनैतिक परिस्थितियों में हँसाने की सामर्थ्य रखता है। उसका व्यंग्य-रोचन तक हास्य का जनक होता है।

### ९ मंच-व्यवस्था

लोक नाटकों के मंच लुप्त होते हैं। मंचिर के सामने या पीछे पर किसी ऊँचे स्वान पर दृष्टियों के सहारे एक-ही पंक्ति की सजावट काही होती है। पर्यं बरतने की व्यवस्था कभी लोक-नाटकों में नहीं होती। बुद्ध की व्यपना 'मोरेनिटी प्लेज' की तरह कर भी जाती है। सभी पात्र अपने उत्तरवाचक से परिचित होते हैं और सभी की सभी तरह के काम करने पड़ते हैं। एक आन्तरिक उत्साह का तार सबको एक ही दिशा में प्रेरित करता है। लोक-नाटकों की व्यवस्था भी व्यवस्था ही कहलाती है।

समस्त प्रकार के लोक-नाट्यों का पर्यवेक्षण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि १७वीं शताब्दी में प्रचलित लोक-नाटकों में धारण बहुत बड़ हो गई है। अब समाज के सामाजिक स्तर में काही परिवर्तन हो गया है और आवश्यकता इस बात की है कि लोक-नाट्यों के इसी बड़ स्तर में नये कथानकों और नये पात्रों का प्रचार दिया जाय। इसके लिये उदात्तता लेकर अभिनेता संगीतज्ञ और कार्यकर्ता सम्मिलित कर ले इस प्रकार की लोकमयी परम्परा का अध्ययन कर नई रचनाएँ लिये और उन्हें ग्रामीण अभिनेताओं से ही प्रारम्भ में अभिनीत करवाएँ। शासन का सहयोग तो अपेक्षित है ही, पर समान प्रयत्न और धैर्य की आवश्यकता भी है। धारा बिलुप्त योजना प्रारम्भ में बना कर इस दिशा में गतिशील होना चाहिये। राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना बिना इस क्षेत्र के लोकमयी नाटकों के अध्ययन और सहयोग के साकार नहीं हो सकती।

१. लोकनाट्यों की मंडलन बिंदु पर देखिये—श्री जगन्नाथ माधव का मीरा, परिशिष्ट १०।

भारतवर्ष का जन प्राणी है। उसकी वसति जमी के सापनों से की जा सकती है। एक बड़ी दूरी भी जलमें घीर हममें बनी हुई है वह हमारे उसके रंपमन में है। वह लगेष्ट है। हमारे मंच उसके सहयोग के बिना गुस्त है। हमें इस प्रकार की हल करना है। इसलिये नये संयोजन बनाने होंगे। प्राणीनों के जगते हुए मंच घीर भूत जाते हुए बाघों में ध्वनि का प्रचार करने के लिये हमें जुने मंच का (सोपन एयर बिमेटर) का आन्वोलन लीज-समय कर, पर बुद्धतापूर्वक आरम्भ करना है। इसके अन्वय में हिन्दी का मंच न पनक सकता है घीर न राष्ट्रीय मंच की स्थापना हो सकती है।







लोकधर्मी

नाट्य परम्परा



## उत्तर भारत

### रासलीला

'रस' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार के मत उपलब्ध हैं। 'रसानां समूहो रस' के अनुसार रस रसों का समूह है। महाभारत में कृष्ण के अनेक रूपों की कल्पना और दो गोपियों के मध्य एक-एक कृष्ण की प्रवृत्ति एक रसपूर्ण भावोन्मत्ता है। यह भी रस है। रस में मूल्य अभिनय और संबंधों द्वारा रस की सृष्टि की जाती है। एक मत के अनुसार जिसमें कृष्ण गोपियों के साथ मण्डनाकार मूल्य करते हैं—रस है। डॉ० कंकड (Kankad) का मत है कि 'रस' शब्द की व्युत्पत्ति 'रस' से नहीं अपितु 'रस' से है, जिसका तात्पर्य मूल्य के मध्य में जोर से चित्ता उठने से है। कैदा कि धातुकल वागीश कोट-मूल्य प्रवृत्ता धारिवासी मूल्य में देखा जाता है। डॉ० बघरव घोषा का मत है—'रस' शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है प्रकृत देसी भाषा का है जो संस्कृत बन गया और देसी भाषा-कला को जो रस के नाम से प्रसिद्ध की रस के नाम से ही संस्कृत रूपों में उद्भूत कर दिया है। रस के देसी होने का अनुमान इस बात से भी होता है कि 'रस' और 'रसक' नाम से राजस्थानी में इसका प्रयोग भी मिलता है और यह रस जिसका विशेष संबंध गोपियों से है प्लासों में प्रचलित कोई देसी भाषा हो सकता है जो संस्कृत भाषा से प्रचलित नहीं माना जा सकता। रस की परिभाषा व्याख्या का विषय है तो भी 'रस' रस का मूल रस है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी कीरणा का कालीन 'रसों' का संबंध 'रसक' से बताते हैं। धुल्ल जी न लिखा है—'बीरबराज रासों में काव्य के धर्म में 'रसमय' शब्द बार-बार आया है। यहाँ हमारी समझ में इसी 'रसमय शब्द' के 'रसों' हो गया है। कदाचित् रस शब्द से परिपूरित होने के कारण ही बीरबराज जीमाधों के शब्द 'रसों' कहना लगे हों। हो सकता है उनमें अभिनय का समावेश भी हुआ हो। भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र में रसक एक उपपद है। उन्होंने रसक के तीन भेद (१) राम रसक (२) रस रसक और (३) मंडल रसक बताए हैं।

राम रसक नामस्यम् तत्त्वित्वा रसकं स्मृतम् ।

रस रसकमेकम् तथा मंडल रसकम् ॥

नाट्य-शास्त्र का समय प्रथम यादवी के समय में स्वीकार किया गया है। यहाँ प्रथम यादवी के पूर्व हमारे यहाँ रस की यह सम्परा लोक में प्रचलित चित्तवान थी। किन्तु 'भारत रसप्रद' (आत्मज्ञान सार संहिता) में इन बात का उल्लेख मिलता है कि कृष्ण गोपियों के साथ मूल्य एवं सीनाएँ करते थे। यह रचना बीबी यादवी ई० पू० की बताई जाती है। सम्भवतः इतीति मकलीन भारतीय भाषाओं की उत्पत्ति का साधार

१ डाइप्टा धौक संस्कृत भाषा १४३ ।

२ हिन्दी भाषा : उद्भव और विकास, ७५-७६ ।

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास ३२१



कृष्ण-अन्त के प्रसार से मानते हैं। हेमचन्द्र (काम्यानुशासन) के मतानुसार रासक नव रूपक है। किन्तु यह विचाररहित है कि 'रासक' नृत्य अभिनय और संघीत की त्रिवेदी का एक मिठा-मूसा सौक्यिक रूप (रसों का समूह) है।

माट्म-शास्त्र में वर्णित 'ताल रासक' (तालबद्ध नृत्य) 'दण्ड रासक' इन्हीं को बजा कर किया जानेवाला नृत्य' (शास्त्रकस जिसे राजस्थान मारवाड़ वन और मातवा में 'घग्घ्या रमण्या' या इन्हीं का खतमा रहते हैं। वे वस्तुतः मच्छमाकार एवं सामूहिक पुरण नृत्य ही हैं जो दण्ड रासक के बहुत निकट हैं। एवं 'मच्छम रासक' मच्छमाकार नृत्य रहे होंगे। इस प्रकार के नृत्य के कई प्राचीन विभ मिलते हैं।

प्राचीन गुजराती साहित्य में रास प्रन्नों की एक साहित्यिक परम्परा का उल्लेख भी कम्हूमासाल मासिकमाल मूची में अपने उच्च 'पुजरात एव इदम मिदरेवर' (१८३५) में किया है। इस परम्परा के इन्हीं में वीह-वीताइनों का प्रयोग हुआ है जिसमें प्रेम-कवार्दें मिली गई हैं। ई० सन् १९१८ में मूचीजी ने पुजराती के 'मच्छरेवर' परम्परा मपन्नस साहित्य का धर्म बताई गई है। मूचीजी ने पुजराती के 'मच्छरेवर' बाहुवली (१९४५) से भी रास की परम्परा का संबंध स्वीकार किया है।

धार्मिक संकीर्णों में 'रास' धार्मिक विचारों का स्वर्ण पा कर बहू के पुन स्वरूप से समिद्ध हो रहस्यमय स्थिति तक पहुँच गया है। सीता रस-मूजन का माध्यम है। यही अस-सीता रास भी धार्मिक परिभाषा में गुणा का चुका है। जगवान् रास रूप में है। रास में ही उन्हें ध्यानस्थ प्राप्त होता है। सीता रस-मूजन का माध्यम है। यही अस-बान् की प्रेमस्वरूपा अभिव्यक्ति है।

'राससीता' प्रचलित धर्म में कृष्ण चरित्र से संबंधित नृत्य—प्रतिमात्मक विविध सीताओं का चोख शब्द है। नृत्य के साथ धार्मिक रूप में संघर्षों एवं प्रभाव रूप से संघीत का इनमें प्रसार है। अतएव राससीता अभिनय नाटक के तर्कों से अनु-प्राणित हो कर अपने लोक-प्राप्ति रूप में अपने रंजन की नाट्य संरक्ति है।

मातृगी साहित्य एवं नसा में इन्हीं एक ऐसे चरित्रनायक रहे हैं जो न केवल

१ नाट्यशास्त्र के अनुसार 'ताल रासक' में निपुण जाति 'जाद बताई गई है। राजाधाम के भद्र यद्यपि आधित एवं बेरोबर यम-वर्जन करनेवाली जातियों में गिने जाते हैं तथापि किसी समय के नृत्य-नाम में निपुण रहे होंगे यह प्रभावित होता है।

२ जिसका मूरी ने इसे 'मकुड रासक' नाम कहा किन्तु इतीतिसे दिया प्रणीत होता है कि मकुड का तात्पर्य लकड़ी या डंडे से है। 'तल लोच रास' प्रथम में 'दण्ड रासक' करनेवाली जाति 'मर्क' बताई गई है। यह प्रथम ही इस नाम में

३ 'हल्लीन' नामक नृत्य इती 'मच्छम रासक' का एक भेद है। मरत में बीवी की जर्बों की है। जिससे प्रसन्न होता है कि बीवी में बहुत कुछ मरतप होने हुए भी बीड़ा भेद है। बालाधाम में इसका उल्लेख दिया है (हल्लीनक बीडेमके मायेम)। अभिनय नृत्य (इसी तालावरी) ने ती नाट्यशास्त्र की बीड़ा करने हुए स्वयं धार्यों में हल्लीन नृत्य की मरतलाचार नृत्य बनाया है—'बीडेम पु यमम्वं हल्लीन किर्तितरमुनम्।' इतने जान होता है कि इसी तालावरी तक बीवी नृत्यों में निर्माण भेद नृत्य हो गया होगा।

अपनी नीतियों के सिरे बिखरात हैं, बल्कि वर्धन साहित्य और राजनीति में भी इन का प्रवेश निस्संदेह प्रभावी है। मध्यकालीन उत्तर भारत में कृष्ण-नीतार्थ अपनी लौकिक रचना का विषय बनीं। राजनीति सभी परम्परा की सम्पत्ति है। इस राजनीति का संबंध न केवल धर्मग्रन्थों से है बल्कि द्वितीयवीं या अनुमान है कि "माधवत महापुरुष में भी कृष्णनीति की जो परम्परा अभिव्यक्त हुई है, उससे मिला एक और भी परम्परा थी जिसका प्रकाश जयदेव के 'गीतगोविन्द' में हुआ। माधवत-परम्परा की राजनीति धर्मपूर्णता का हुई थी गीत गोविन्द-परम्परा का राज महत्त्व कम में है।

सूरदास प्रायः परवर्ती अनेक कवियों में से दोनों परम्परों एक-दूसरे से पुनः कर एक हो गई हैं।<sup>१</sup> इन दो इन नीतियों का केन्द्र रहा है। द्वार में मयमान भी कृष्ण का धारिणी होते ही बोधे ही समय के पश्चात् जन-जन में उनकी नीति अभिनय के रूप में प्रचलित पाने लगी। राज-नीति मान-नीति साधन-नीति धाम-नीति के साथ ठोड़ी-ठोड़ी धारि से अभिनय एवं अष्टछाप के कवियों की रचनाओं पर निरूपण सूर के पदों का आधार लेकर विविध नीतार्थ की जाती रही है। १५-१६ वीं शताब्दी में ब्रज-भूमि में यह परम्परा नये उत्साह के साथ प्रकट हुई। गणराज ब्रजवासीदास भूपदास धारि मन्त्रों ने उन्हीं की रचना कर राज-परम्परा के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। प्राक्कल राज की अनेक पुस्तकें उत्तर-भारत में मिलती हैं जिनमें कबोचकपन की रीति-बद्ध रीति के साथ संबंध का निर्देश भी कहीं-कहीं उपलब्ध है। ब्रजवासीदास इत 'ब्रज विनायक' एवं नारायण स्थायी रचित 'ब्रज-विहार' तो राज रीतियों की मिला पुस्तकें हैं।

१४वीं शताब्दी के पश्चात् वैष्णव मन्त्रों एवं धारियों ने राज को उत्कर्ष प्रदान करने के सिरे नीतियों का जो प्रभाव गहरा किया वह प्रभाव धार्मिक धारों से संबंधित था। इन मन्त्रों के राज तो प्रायः सभी धार्मिक है। बीररस प्रभाव उन्हीं की नीति ही परिमिति है और धार्मिक धारों-नीतियों के कारण वे नीति भी रह गये। बल्लभाचार्य जैसे धारियों द्वारा उसमें कदापि श्रुतारी भावों को अनिर्दिष्ट प्रभाव नहीं मिला होता। महाप्रभु की इस राज-नीति में अनेक उत्कृष्टताएँ कलाकारों का सहयोग रहा है। कहीं हैं स्वामी हरिदास, हित हरिदास राम (१५२६ वि०) बल्लभदेव और नारायण भट्ट<sup>२</sup> भी बल्लभाचार्य के साथ राज के संस्थापकों में हैं। बताया जाता है कि बल्लभदेव ने तमिळु सभी के पाँदवाने कुछ मन्त्रों को अभिनय की शिक्षा दी और अकबर के दरबार के मुख्यका बल्लभ ने बुद्धाचार्य था कर उन्हें गुरु सिखाया। इस तरह एक राज-मंडली बनी जो अपने समय में बहुत प्रख्यात हुई।

जनधर्म की अनुकूलता एवं अभिनयप्रसक्त प्रभाव के सोझाही विकास में राज-नीति अधिकोद्यत श्रुतारणी होती रही जिसका परिणाम यह हुआ कि इतर प्रायों में से नीतार्थ कहीं की परम्परागत नाट्य सम्पत्ति को भी प्रभावित करने लगी। धार राजनीति लौक-नाट्य ही है एवं नुने रचना तथा उसके प्रभावों को देखते हुए यह

१ मध्यकालीन धर्म-साधना, पृष्ठ १३३।

२ जाह्नव नृसिंह नारायण भट्ट को राजनीति का संस्थापक मानते हैं। उन्होंने राज की यूरोप के 'मिरेकल प्लेज' के समान मानी हुए दृश्यकथन बताया है।

—देविपः 'एडिफिकेटेडमेमोरियलमबुल' पृ० ८२, सन् १८००।

बोदेन उरी नीति (समूह नृत्य) और नारायण हवन धार्मिक कथन मानते हैं।

‘लोक’ की ही वस्तु मित्र होती है। रासक का सम्बन्ध ऊपर किया गया है। मुनि भिनविजयजी ने ‘संदेश रासक’ की धारा की है, जिसका रचना-काल ११वीं शताब्दी प्रतीत होता है। यही धारा न हमकी कथा संलेख में प्रस्तुत करते हुए कुछ संवारा का अनुवाद प्रस्तुत किया है। उसे यहाँ उद्धृत करना प्रार्थनिक होगा।

“विजयनगर की एक धुवनी अपने प्राणनाथ के विद्योत्त में धनु बहाली विद्योत्तानि में सुलभजी पति-वर्धन की मासमिय पत्र पर लड़ी चारों ओर मिहार रही है। इतने में एक पक्षिक आता है जिसके पास पहुँचकर शिष्यियों के साथ बत की संदेश भेजना चाहती है। उसकी विपत्तावस्था देखकर पक्षिक उसे एक गाना सुनाता है। पक्षिक और विरहिणी में इस प्रकार संवाद होता है—

विरहिणी—“आप कहां से आते हैं कहीं जर्मने ?”

पक्षिक—“जहाँ मैं उस शम्भुर से आ रहा हूँ जहाँ प्रमत्त करते हुए स्वान-स्वान पर प्राकृत के मधुर गान सुनाई पड़ते हैं वरक बेर की व्याख्या करते हैं कहीं-कहीं रासकों का अभिनय करने द्वारा किया जाता है।

पक्षिक—“यह मुझे प्रस्ताव करना चाहिये। आप अपनी अनुवाद ऐकिये समझा मुझे अक्षुण्ण के कारण मार्ग में आपत्ति की आशंका होती है।”

विरहिणी—“आपकी यात्रा संभवतः हो।”

पक्षिक—“सूर्यास्त हो रहा है। आप अपना संदेश संलेख में सुनाइये। यह मुझे अपने पत्र पर प्रसर होता है। कृपा करके इतना बता दीजिये कि आप कब से इस विरहिणी में सुलभ रही हैं ?

विरहिणी—“जब मेरे प्राणनाथ विशेष करने दीप्ति के दिन से तब से एक के बाद दूसरी अनु नई वेदना से कर जाती है।”

राम में कथानक संक्षिप्त और सूचना द्वारा दश-वर्तिर्नन की योजना मिलती है। ११वीं शताब्दी में सम्भवतः राम की तीन श्रेणियाँ हो गई—(१) जन-नाटक के रूप में (२) ‘चरित्र’ के रूप में और (३) ‘गाना’ के रूप में।

जहाँ नहीं भी रामजीना का वर्णन होता है, यद्यपि जनता मग्न-मग्न होकर देख तक बैठती रहती है। यहाँ के पञ्चांगम संवाद लोगों को प्रभावित करते हैं। राम जीना के मापक दृष्टि और प्रधान नायिका राधा होती है। राधा शीपियों के साथ संघ पर प्रवेश करती है। रामनाथक कथ है जो रामनाथ दृष्टि का एक राम विरोधी है, यान् उनके संवाद पद्यबद्ध न होकर गद्यमय होने हैं।

रामजीना की उत्पत्ति के विषय में बीरब्रह्मचर्य की यह कथा उल्लेखनीय है, जिसमें राधा एवं अन्य शीपियों ने सहृदय और धर्मिक उत्पत्ति होने के कारण प्रमाण मापक दृष्टि सम्पन्न हो गयी हैं। उन्हें स्मरण करने और उनकी नीताई करने में वे पुन प्रसन्न हुए। हमने भिन्न होता है कि रामजीना की उत्पत्ति विरोध-मार्ग में हुई। किन्तु यह निश्चित है कि भगवत् धर्म के प्रचार में रामजीना को बहुत घाने काज में योग दिया।

एक विद्वत्ता के अनुसार रामजीना मणिपुरी नृत्य की उत्पत्ति का आधार मानी जाती है। यह बात विचारी रामजीना का आधारभूत बन गये। तभी चार्ली ने नृत्य और पृथक् की उत्पत्ति नहीं और अपने परवाना मिलती में रामजीना के रीति बनने का

अनुरोध किया। श्रीकृष्ण ने यह स्वीकार नहीं किया किन्तु पार्वती के अनुरोध का अनुमान कर किसी गुप्त स्थान पर वह धारोक्षण पुनः करने की स्वीकृत दे दी। शिवजी ने बड़े ध्यान से एक स्थान जोड़ निकाला। उन्होंने देवी-देवताओं यन्त्रों अष्टराशों आदि की रासलीला में सम्मिलित होने का निर्माण मेला। नवी मूर्धन से कर, बाह्य संज्ञ से कर और इन्द्र नेत्र से कर उपस्थित हुए। नागराज की कृपा से सम्पूर्ण स्थान धारोक्षण हो गया। शिवजी ने अपना स्वर्गीय नगीत आरम्भ किया। रासलीला आरंभ हुई। यह रासलीला लगातार सात दिन और सात रात होती रही तभी से 'मणिपुरी नृत्य परम्परा' आरम्भ हुई।

कालियानाग के दमन के पश्चात् श्रीकृष्ण ने दूतावनवासियों के साथ नृत्य किया था। वह नृत्य बस्तुतः लोकनृत्य ही होगा जिसे रास की संज्ञा दी गई। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने भागवत पुराण में उपलब्ध रासलीला की जो विस्तृत वर्णन की उसमें राविका के साथ कृष्ण के नृत्य के प्रतिरिक्त पुरवासियों सहित नृत्य का भी उल्लेख है। यह नृत्य गीताकार हुआ करता था। कृष्ण मध्य में और उनके आस-पास गोपियों के जोड़े नृत्य करते थे। कई प्राचीन चित्रों में राविका के साथ कृष्ण मध्य में बताये गये हैं। कालियां दे कर नृत्य करते हुए चित्र भी उपलब्ध हैं।

गुजरात में संत कवि नरसिंह मेहता (१५वीं शताब्दी) के विषय में प्रसिद्ध है कि उन्होंने कृष्ण की रासलीला का दर्शन किया था। उस समय वे हाव में मगान लिये हुए थे। रास-दर्शन में वे इतने तल्लीन हो गये कि मगान उनके हाव की ही बनाने लगी।

रास-नृत्य की समानता गुजरात के परवा-नृत्य से बहुत मिलती है। वैसे गुजरात में 'रासको' भी एक प्राचीन नृत्य का प्रकार है। सूरत के निकटवर्ती ग्रामों में मोरपंकी की बाँध कर देवी ने समस्त जो नृत्य किया जाता है उस 'मोर्या रास' कहा जाता है। रास के अधिकार गीत गाना में भी पाव आते हैं। कुछ अंशों में रास एक साक-नृत्य भी है। अभिनय का स्पर्श पा कर 'रास' लोक-नाट्य की कोटि में भी आ गया है।

रासलीला की परम्परा हिन्दी साहित्य की ही बस्तु नहीं अपितु उत्तर भारत तथा उसके निकटवर्ती एवं सुदूर प्रांतों के साहित्य की भी सम्पत्ति है। साक-नाटकों की परम्परा में रासलीला की कहियां दृष्ट्य हैं। रास न वहाँ एक और नृत्य की भूमिका प्रस्तुत की है वहाँ दूसरी प्रकार नाट्य-सामग्री की दृष्टि से लीलाओं में अभिनय संबंधी उपकरण भी दिये हैं।

रास कवियों की भाव ने हिन्दी नाट्य के आरम्भ का समय ठरही शताब्दी प्रमाणित किया है। रास का परम्परा ने मैकड़ों वर्षों तक हिन्दी के आधिकारिक क्षेत्र है। अग्रज में उल्लेख 'रास साहित्य का संशोधित अनुसंधान और भी अधिक सम्पादन का प्रकाश में आ सकता है। 'रास' में सम्मिलित 'रहस्य' शब्द की कहीं विद्वानों ने की है न। 'रहस्य' का निहित रूप प्रतीत होता है। कहा गया है कि उपलब्ध रास-नाट्य की 'रहस्य' कहा जाता था। श्रीकृष्णधाम के शब्दों में 'वाजिपथी शाह अपने यहाँ 'रहस्य' ही कहता था और उसके अभिनय के लिये कैसरबाग में 'रहस्यवादा' भी बनवाया था।<sup>१</sup>

राज की परम्परा कुम्भजीना के विविध प्रसंगों से पूर्णतः साबुत है। भागीरथों के मूल शोध-शोधिकाओं की नीमाओं कुम्भ संबंधी विविध ग्रहण अनुगत राखनीता के पन्तवत भाते हैं। कथोपक्रम का प्रमाण यस्तित्व इन नाट्यों में प्रायः मौखिक ही रहा है। अतुरहमान ने राजकों की उगावेयता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "बहु बपिने सुसम्पन्न राजों का लंबाई के रूप में प्रदर्शन किया करते हैं (बहु बहु-स्त्रीकी बद्ध राखनीतातिथई)।" इसके पतिरिक्त अन्य राजों में मंगलाचरण से तथा कर भागीरथिता तक के समस्त नाटक-तरंगों का समावेश मिलता है। डॉ० हररय चौधरी ने हिन्दी नाटकों के आरम्भ की खोज करते हुए राजकों का महत्त्व स्वीकार किया है। इस रीति के नाटकों में निम्न विशेषताओं की खोज भोसा जी ने की है —

१. नाटक कथोबद्ध एवं गैर होते हैं।
  २. यह मात्र प्रायः उल्लिखित होता है।
  ३. नाटक के पात्र आरम्भ से अन्त तक मंच पर ही रहते हैं। प्रवेश और निष्क्रमण का उचित नहीं मिलता है।
  ४. मृत्यु और गीत का प्राधान्य होता है।
  ५. भगवत्पाठ और प्रशस्ति पाठ स्वयं नाटकों की तरह होता है।
  ६. अन्त में नाटक-रचना का शरीरम घोषित किया जाता है।
  ७. बापा उत्तम राजों से अतिरिक्त और बेमन्य उक्तियों से युक्त होती है।
- राखकों के विचार कर्म की सामान्य स्थिति प्रथम तीन भागों में विभाजित की जा सकती है।

१. जैन राजकों की परम्परा जो अब में प्रचलित राखनीता के आरम्भ से जारी पा रही थी। १९वीं शताब्दी तक इस जैन-परम्परा का प्रभाव बना रहा।
२. वैष्णव धर्म के प्रचार के साथ ही क्षत्रिय जातियों ने श्रीमद्भागवत के विविध प्रसंगों से कथानक ले कर स नाट्य रीति का आशय लिया। यह परम्परा मन्दारम तक अपने समस्त स्वरूप में बसती रही।
३. महर्षी शताब्दी के मध्य से ले कर मन्दारम द्वारा परिष्कृत राखनीता की विशेषता हरि चरित 'खण्डोदयिनी नीमा' (मंस १८७८ वि०) तक लघु रूप में जारी रही।
४. हमारे जाने राखनीता विविध नीमाओं के प्रभाव का आधार बनी। १८वीं शताब्दी के मध्य से ले कर मन्दारम द्वारा परिष्कृत राखनीता की विशेषता हरि चरित 'खण्डोदयिनी नीमा' (मंस १८७८ वि०) तक लघु रूप में जारी रही।

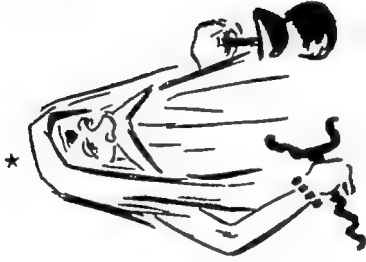
राखनीता का धार के सामान्य जीवन में जो महत्त्व है उसके मूल में प्रकाश और शक्ति तो है ही। यह नई सामाजिकता में पोषित मंगल भी स्पष्ट है। तबकि परिवर्तन-परिवर्तन के साथ यह रीति और भी अधिक प्रभावशाली बनावी जा सकती है। मोर-नाट्यों ने शीर्षिका पात्रा और प्रचार के इन राग ने निराला जान गये हैं। मोर करने का राखनीता ने हरि और भी अधिक गम्भीरताओं उभर सकती है।



रासलीला



रामसीता के दो पात्र (छात्र और राजा के रूप में)



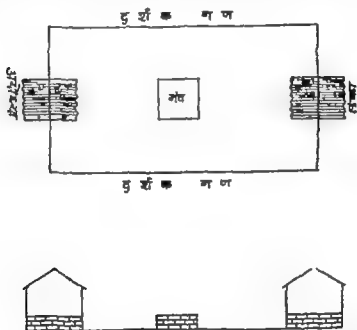
## रामलीला

रामलीला का आरम्भ महाकवि तुलसीदास ने किया है। कुछ विद्वानों का भी यही मत है। रामलीला जैसा कि नाम से स्पष्ट है, राम के जीवन से संबंधित है और इसी-लिये उसका स्थान धार्मिक लोक-रंज की श्रेणी में है। श्री जगदीशचन्द्र माधुर के अनुसार उक्त मत में 'महान् साहित्यिक सत्य धिया पड़ा है। आपका कथन है कि "तुलसीदास रामचरितमानस नाटकीय वर्णन है।" नाटकीय वर्णन (Dramatic Narrative) इस घन में कि रामचरितमानस केवल पाठ करने की कथा मात्र नहीं अपितु वह रंग पर अभिलेख भी है। रंगों के पाठ किये जाने के अनेक उल्लेख प्राप्त हैं। रामायण की कथा कहनेवाले घरों में 'पाठक' और 'गारक'—दो नामों में बंट जाते हैं। एक बल रामायण से पाठ करता और दूसरा उसकी व्याख्या। कर्म-कर्मों इस व्यवस्था में अभिनय भी सम्मिलित हो जाता है। जिससे लोक-रंज पर राम-लीला को प्रभव प्राप्त होता है। सीरी में उत्कीर्ण कुछ वृक्ष इस परम्परा की प्राचीनता को प्रकट करते हैं। राम की कथा से तो लोग परिचित थे ही पर उसी कथा में संवाद चमत्कार द्वारा रस-मात्र उत्पन्न करने की दृष्टि से तुलसी ने जो रचना की वह संवादात्मक कही जा सकती है। इन 'संवादों' को एक सूत्र में बाँधनेवाली कही गयी—सूत्रधार के संकेत प्रायमन और प्रस्थान की सूचनाएँ, कथानक की पंक्ति—का कोई व्योम नहीं मिलता। जान पड़ता है वे सब निर्दोष मौखिक हुपा करते थे जैसा रामलीला में प्राप्त एक होता है। 'रामचरितमानस' के अनेक संवाद तो छोटे-छोटे एकांकी नाटक ही जान पड़ते हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार 'धर्मोप्याकाश' में बटगारों का गुच्छन चरित्र-विकास आन्तरिक और बाह्य द्वंद्व एवं कल्प-रस का पर्यवेक्षण इन सभी नाटकीय रंगों का निष्कर्ष इस लूरी के साथ हुपा है कि उसे युगानी कुत्साय नाटकों की श्रेणी में रखा जा सकता है। जो भी हो इतना तो स्पष्ट है कि 'रामचरितमानस' के कवि की मजर बराबर रामचन्द्र की जीमाधों के नाटकीय वर्णन की ओर रही है समूचा कथानक संवाद के माध्यम से घनावृत हुपा है और कई स्थानों पर विभिन्न प्रकृति के पानों द्वारा ठकपुर्ण रानी में आर्तलाप का प्रयोग रंगमंच के लिये अत्यन्त उपयुक्त है। रामलीला रंगमंच की कल्पना विशेषताएँ उसे यूरोप के पेशवा प्लेज के समरस रक्त देती हैं। उत्तर प्रदेश के कई नगरों में रामलीला-प्रदर्शन एक ही रंग एवं प्रेक्षानुह में न होकर विभिन्न-विभिन्न स्थानों पर अपेक्षित वृक्ष के अनुकूल आकारक और पुनर्निर्मित पृष्ठ-भूमि से लान उठाते हुए किया जाता है। बनबास तथा की लीलाएँ मन्दिरों में होती हैं, रंगारार के लिये नगर के किमी अमादाय अथवा नहर को चुना जाता है। विशिष्ट और समक बाद की लीलाएँ नगर के बाहर एवं विस्तृत मैदान को घेर कर की जाती हैं भरत-विभाप और राम-विलक के लिये पुनः मंडली नगर का बापस जाती है। इस तरह 'रामलीला' का रंगमंच अपने ढंग का अवातम्भवाही (रिप्रेजेंटेटिव) रंगमंच है और साथ ही वस्तु-विषय की महत्ता का खोज भी।<sup>१</sup>

इस प्रकार के अवातम्भवाही रंगमंच का एक और रूप देखने में आया है जिसमें विस्तृत मैदान के दो विरोधी छोर मंचा और अयोध्या मान लिये जाते हैं। मध्य में एक उन्नत मंच पर रंग मंच का आयोजन किया जाता है। 'पाठक' और 'गारक मंच' पर



हैं। एक घोर बँझे हैं। प्रगण धारम्भ होने पर राजन सँका से बस कर घाता है और राम बयाह्या है। मुँह के चारों ओर बर्तक के लिये स्वाग होता है। इस प्रकार की व्यवस्था कुछ स्थानों पर स्थानीय रूप से रामलीला के लिये कर ली जाती है। स्थायी व्यवस्था में सँका और बयाह्या के स्वाग पर पन्द्रह चबूतरे बना कर उन पर स्थायी बयाह्या व्यवस्था बना बनाये जाते हैं। इन कयों में पानों के लिये आवश्यक प्रसाधन और विधाम की व्यवस्था होती है। मैदान के एक भाग में जनवास का चित्र प्रस्तुत करने के लिये कुटिया भी छावा ली जाती है। लीलाप्य से मैदान में कुछ पेड़ हुए ता कुटिया की सीमा का बना कहना। इस प्रकार के लुने रंगमंच मनक से मासवा और बुन्देल मुण्ड की सीमा पर बने हैं। बिचिया के निकट प्राचीन नगर म्यारसपुर के मंच का ऐसा चित्र मानचित्र विषय का अधिक स्पष्ट करने के लिये प्रस्तुत है।



रामलीला उत्तर भाग है नहीं कुछ हेर-फेर के साथ समस्त भारतवर्ष एवं उनके नाट्यकर्मी लोगों का पारिभाषिक मंच है। ऊपर 'रामचरितमानस' का नाटक की बयानी कर बना दिया है। डा. बिचिया जीवन्तवर्ष तथा विवेक तीनों ने इस प्रकार का अनुमान करिक आचार्यों में संवादात्मक भाग ले कर ली किया था। आचार्य उनके मन में नाटक के दो पद्यारम्भ सम हैं जो सुरीतान यह मंचे और बीच बीच में प्रयुक्त होनेवाले पद्यार्थ परिवर्तित होने यह, इसलिये भिन्नबद्ध नहीं किये गये।' इस मन पर भागे पर्याप्त रूप से विचार किया। इस मान 'रामचरितमानस' के मंच में प्रवेश का स्वाग मंच नहीं है। बयानि मोच रंगमंच पर उनका प्रथम प्रयास हुआ था रहा है। रामायण और महाभारत के नाटक और 'भारत' नाटकों में रामलीला के अभिनय मंच मिल हुए हैं। भक्ति आन्दोलन के पूर्व रामलीला प्रदर्शन के प्रमाण मिलते हैं। हरिद्वारपुराण (४ = ६ पृ०) में रामलीला पर आचार्य एक नाटक अभिनीत किये जाने का उल्लेख है। बाणवीर के

समय और-पूजा के निमित्त पावे जानेवाले गीतों और अभिनय में रामकथा का प्रभाव था। सब-कुछ तो रामकथा का मायन ही करते थे। कदाचित् इलीमिये 'कुलीमन' धरम पूर्वकाल में मायक एवं प्रमिता ने पर्याय स्वरूप स्वीकार किया गया था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि रामकथा को सिधित करने के पूर्व लोकमंच पर राम की जीवन-लीलाएँ प्रारम्भ हो गई थीं। बहुत सम्भव है कि तुलसीदास ने इस माध्यम को सुम्पनस्थित रूप देने के लिये मानस की रचना नाटक की दृष्टि से की है। अतएव यदि काशी के रामनगर की रामलीला के संस्थापक तुलसी माने जाते हैं तो सम्भव है यह सत्य नहीं भी हो।

रामानन्द ने रामकथित के प्रचारार्थ बहुत सम्भव है रामलीला का माध्यम प्रयुक्त किया होगा। कदाचित् उस समय की सोलापौ की मंच धारा की तरह सुप्रसिद्ध न होकर अनन्य प्रसिद्ध होना। इस अनन्यता का परिष्कार तुलसी के 'मानस' से किया जाना सम्भव विचारणीय है। तुलसी के समय या उनके धर्म-लीले प्रयोग की दृष्टि से राम सर्वोच्च नाटक मंच के लिये लिये गये हों ता प्रारम्भ नहीं। लोकमंच की सम्पत्ति होने के कारण उनका धाम प्राप्त न होना प्रारम्भ का विषय नहीं।

१८वीं और १९वीं शताब्दी की लीलाओं के लिये ऐसे वर्णन उपलब्ध हैं। बिन्दे पदा चलता है कि रामलीला उत्तर भारत के बाहर भी ठेठ दक्षिण के छोर तक प्रसिद्ध थी। इन दिनों की लोग ने उसके सुदूर देशों तक में प्राप्त होने के प्रमाण उपलब्ध कर दिये हैं। किसी न किसी रूप में प्रायः सभी पड़ोसी देश राम को उनके देश का पावन पुरुष समझते हैं। जहाँ में कवि सूतो लिखित 'रामायण' (रामायण) यद्यपि मंच की रचना नहीं है, तो भी लोगों में रामलीला 'रामायण' नामक नाटक के रूप में प्रचलित है। स्वाम में कठपुतलियों द्वारा रामकथा बतलाने की जाती है। रामलीला भी लोगों में प्रचलित है। बांग्ला देश के लोक-नृत्यों में रामकथा की बटनाएँ प्रदर्शित की जाती हैं। कम्बोडिया के 'रैयामके' यद्यपि स्वाम के 'रामलीला' लोगों के परिचित राम के जीवन संबंधी घटनाएँ दोनों देशों के प्राचीन मन्दिरों में उत्कीर्ण पायी जाती हैं। यद्यपि प्रदर्शित करने में लोक प्रचलित कठ पदमंचों का बहुत प्रभाव निभा जाता है यद्यपि रामायण की मूलकथा में विशेष परिवर्तन नहीं होता। सुदूर अमेरिका में भी नाटकों में राम-रामन मुक्त के प्रदर्शन देखे हैं।

मध्यकाल की परिस्थितियों में मुख्यतः उत्तर और मध्यवर्ती भारत में रामलीला और रामलीला को पनपने का सब अवसर मिला। उस में कृष्ण चरित्र के साथ संबंध के उपयोग एवं मार्गमयी शृंगार चोटियों के लिये पर्याप्त रूप रही है। अतएव उन दिनों रामलीला की प्रवेश रामलीला संबंधी नाटक रचनाएँ प्रसिद्ध हुईं। पूर्व में राम-दरबारी नाटक-कला भी 'कोर्रिमा' और 'प्रिया' के नाम से नेपाल सिंधुला और असम में पनपी कृष्ण चरित्र पर ही प्रचलित थी। रामलीला में राम के उदात्त चरित्र को रसा करने के लिये सब संबंधी कथिबिधियों में अर्थात् प्रदर्शित रही है। पुरोहित राम के व्यक्तित्व की छाँटी उस के राजा और कृष्ण की लीलाओं के डीक विपरीत है। रामलीला में इसीलिये शृंगार को पनपने का अवसर नहीं मिला। राम के प्रति लोगों में आध्यात्मिक भक्ति है। कृष्ण उनकी तुलना में शृंगार के प्रामाण्य हैं। प्राचीन प्रसिद्धियों की जा दृष्टि उस में होनी है वह रामलीला में मंच नहीं। धाम भी नेपाल और सिंधुला के कीर्तन कृष्ण-कथा पर आधारित है। यही कदाचित् ही सिंधुली शताब्दियों में लिये गये राम-संबंधी नाटक मिलें। हिन्दी में १९वीं शताब्दी में

राष्ट्रेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से कुछ प्रमुख नाटक लिखे गये जिनमें 'सीता-स्वयंवर' (देवकीनन्दन प्रसादी), 'रामसीमा-बिहार' (मधुकर) तथा 'रामसीमा' (रामोदर दास्त्री) मुख्य हैं। राष्ट्रेंद्रु के पश्चात् रामसीमा को सुवर्द्धित बनाने के लिये माधव सुषम एवं उनके साथियों ने १८९८ ई० में श्री रामसीमा नाटक संघों की स्थापना की थी पर वह नहीं बसी। स्वामी जीर 'माध' की बज पर मिली गई 'रामसीमा' बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मिली है। मालवा में 'रामसीमा माध' की किसी समय बड़ी धूम रही। आज भी कभी-कभी माध में सीमा में यह सीमा अभिनीत की जाती है।

रामसीमा का रस की भाँति अपना स्वतन्त्र विकास हुआ। बहुत संभव है दोनों की नाट्य संरचनाओं में प्रतिस्पर्धा भी रही हो। 'रामसीमा' में 'मानस-पाठ' की परम्परा ही उसकी लक्ष्यता की चोकर है। उसके द्वारा कथा-सूत्र जुड़ते जाते हैं और तदनुसार अभिनय बनता जाता है। रिजने ने ऐसी सीमाओं को देख कर जो वर्णन किया है, उससे पता चलता है कि (१) मूल और गीत के साथ कथा का विकास (२) पद्यात्मक संवाद (३) मुक्ता मंच (४) गीतमय प्रदर्शन एवं रंग सेवन (५) मंच पर स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध और (६) पठितमय अभिनय—भोक्कभी नाट्यों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। रामसीमा में नाटकीय पंक्ति मुक्तादि प्रचुरता से ही सीता पड़ती है प्रत्येक रंग अभिनय में शान्त एवं धीमे-धीमे बातचीत बना रहता है।

यहाँ व्यतीत हो गये। वही राम वही सीता वही लक्ष्मण वही भद्रा और वही रामन तोकमानस में बसे हुए हैं। आधिकारिक बास्मीकि ने राम-कथा के प्रचार के लिये—

“माधत् स्वात्मगत मिरयः तरितरयः महीतले ।

ताकावामावय-कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥”

किया वा वह आज सत्य सिद्ध हो रहा है।

रामसीमा प्रस्तुत करने की कुछ उत्प्रेक्षणीय सीमाएँ हैं। दक्षिण भारत में 'कवकनी' का कतिपय भाव-अंगिमार्गों का आधार रामकथा है। १७वीं शताब्दी में केरल में श्री रामकथा ने इस सीमा में रामकथा को प्रथम बार अभिनीत किया था। बाद में १८वीं शताब्दी में रामा रामनाथम् ने रामायण की कुछ मुख्य घटनाओं को कर कवकनी सीमा की कुछ भाव अंगिमार्गों का परिवर्तन किया। कवकनी मूल रूप से मंच पर होती है इसलिये मीठ-मीठान से संबंधित है। नर्तक ने प्रवेश करते हैं मंत्रीपाठ होता है। लक्ष्मणान् कथा प्रारम्भ होती है। मंच पर नर्तक आधिकारिक अभिनय द्वारा उसे रूप प्रदान करता जाता है। स्थानीय विचारवादी मनवाणी रीतों से प्रभाव से उभरती जाती है। यह सीमा दक्षिण भारत तक ही सीमित है।

उत्तर भारत में मुख्य और प्रमुख दोनों ही बाधाएँ वा राम रामसीमा में। मंच के एक और और कर बाधक रामायण न पान करता है। पान करने हुए वहाँ अभिनय संभव है वही अभिनेता अपने हाव-भाव से कथा की प्रथम करता है। एक और प्रचार इसका अभिनय हुआ है। पाठक द्वारा पढ़े हुए रंग को पान मंच पर अपनी भाषा में गंधाधारक रूप में बोलते हुए अभिनय करने हैं।

रामसीमा वा यह कम आधिकारिक गंधा अभिनय न प्रारम्भ होता है। जनता ऐसी सीमाओं में उन्मादपूर्ण मान लेती है। किसी भी पक्ष की वही हुई नहीं कि उसने स्वयं पर कोई स्वयंसेवक मुग्ध अभिनय हो जाने है।

हिन्दी में रामसीमा की वही पद गंधी है। लगभग सन् १९२० के दिनों में केवल एक ही रामसीमा होती थी। बाद में नव्या धुने लगी। कहा जाता है कि बहादुरसाह के

समय महन्त राजौरास ने दिल्ली में इस उत्सव का आरम्भ किया था। सन् १९१८ में रामलीला के संभावनार्थ रामलीला-समिति को धातन द्वारा मायता प्राप्त हुई। तब से यह उत्सव सुव्यवस्थित रूप से आयोजित होता आ रहा है। राजौरास की परम्परा में भाव को महन्त है वहीं रामलीला के संभावनक हैं। [परिधिष्ट में इस महन्त परम्परा का व्योच दिया गया है।]

अयोध्या में धनोक्ता कुल देखने को मिलता है। वहीं आश्विन कृष्ण तृतीये से आरम्भ होकर रामलीला के विविध प्रसंग १२ दिन में पूरे होते हैं। लंका-युद्ध की घायलीयना में बड़ा परिश्रम किया जाता है। छाठ-सत्तर फुट ऊँचा रावण का महल बनाया जाता है। उस पर हनुमान रस्ती के सहारे उड़ कर अभिवाह करते हैं। धारा में आश्विन कृष्ण प्रतिपदा से रामलीला शुरू होती है। जब राम को वनवास दिया जाता है तो नगरवासी मंत्र को छोड़ कर राम को समुद्र के पार पहुँचाते हैं। यहाँ उपमुक्त स्वर्णों पर घटनाओं का क्रम से आयोजन किया जाता है। मधुरा में आश्विन धृस्व प्रतिपदा से कई रामलीला मण्डलियाँ उत्सव आरम्भ कर देती हैं। लखनऊ में ता होड़-सी लग जाती है। कूर्माचल में विजयावसमी के अवसर पर रामलीला का प्रदर्शन होता है। साबारस संघर्षों के विचरित देखी राग-रागिनियों में वास्तीकि और सुन्दरी की रामायण के प्रसंग गाये जाते हैं। नेपाली और तिब्बती रामायण के पाँच पक्ष निखरे हुए होते हैं। अभिनय भी उसके लौकिक प्रभाव को उठाने में योष प्रदान करता है।

रामलीला में वेप-भूपा और रंग-सज्जा के लिये विशेष परिश्रम नहीं किया जाता। काजस बनन सुरमा गेक राख बाढ़िया पेबकी रोनी मुर्दा सिमी मोहर, बने दु-बेहरे-मोहरे, पक्षियों से बमकाये हुए मुकुट लकड़ी के भस्व-रास्व बाड़ी-मुँह, कपड़े कमप्लस हनुमानजी और बच्चों के लिये लक्ष्मणजी पूछें, राम-लक्ष्मण के प्रेमी के प्रेमे बनुप-बाण भादि सामग्री पर्याप्त है। मन्त्र यह कि रामलीला में इस कुछ प्रस्वामाधिकता होते हुए भी लोग उसे बड़े उत्साह से देखते हैं। ऐसा इसलिए कि यह परम्परागत लोक-नाट्य लोगों की वास्तविक भावनाओं को परिपूर्ण करता है पर उनके लिये मनोरंजन का आवश्यक साधन भी हो गया है। यद्यपि पर रामलीला स्थाव मान रहे गई है तथापि उसके परिवार और प्रत्येक आयोजित योजना को ध्यान में रखते हुए वैधान्तापित प्रयत्न किये जाने पर राष्ट्रीय मंत्र का स्वकन सहज ही उपलब्ध करवाया जा सकता है। देश में कतिपय मूल्य-मण्डलियों पर पड़ा है। मूल्य-नाट्य रूप में इसे ने किये हैं उनसे रामलीला की सीमा में एक दृष्टि से अभिवृद्धि है। उसके लोकतात्त्विक रूप का प्रकल है उसमें मंथीय भावधारों का अभिनय होने पर ही कोई भी कला जन-जीवन के निकट धारना रामलीला के संबंध में इस दृष्टि ने विचार किया जाना अपेक्षित है।



## मध्यवर्तीभारत

### ‘माच’ और ‘ख्याल’

‘माच’ शब्द मंच का मालवी तत्सम रूप है। मालवी में यह शब्द मंच बाँचने और उस पर अभिनीत किये जानेवाले ‘ख्याल’ (लेख) दोनों ही अर्थ में प्रयुक्त होता है। वस्तुतः ‘माच’ मंच पर अभिनीत किया जानेवाला मालवा के पठार और निकटवर्ती क्षेत्र का लोकनाट्य है। माच की व्याख्या के पूर्व माच-मंच के विषय में संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत करना यहाँ भूमिका की दृष्टि से उचित होगा।

माच-नाट्य प्रारम्भ करने के कुछ सप्ताह पूर्व उचित मुहूर्त में ग्राम घणवा नगर की बस्ती के किसी खुले एवं निश्चित स्थान में माच-मंच का ‘तम्ब’ (स्तम्भ) स्थापित किया जाता है। उस समय माच-नाट्य के अभिनेता और कार्यकर्ता एकत्र हो कर घणवे घुब के कर-कर्मलों में ग्राम की पूजा कराते हैं। ग्राम के पञ्च घर घर बस्तरी बनिया बुड़ और लाल-लाल बत्तन पूजन-धामणी में प्रयुक्त किये जाते हैं तथा पूजन की सेवा में होलक का सतत रूप से बजना अनिवार्य समझा जाता है। माच-मंच के निर्माण के लिये यह औपचारिक आयोजन मासिक माना जाता है।

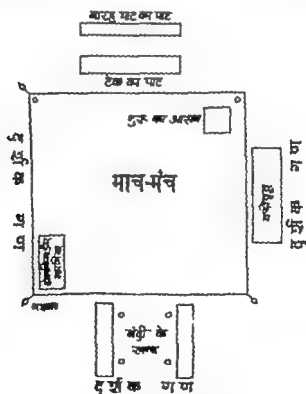
मंच प्रायः कुछ खम्बों पर ५ फुट से लगा कर १० फुट ऊँचा बनाया जाता है। ऊपर चार बस्तरियों के सहारे छप्पर बाहर तान दी जाती है और उसमें रंग-बिरंगे कापड़ों के फूल गोंद से बिछाये जाते हैं। मंच के चारों ओर रंजीत भनिया लाल-नीले बत्तन के टुकड़े घाम के पत्तों की झालरें या जलु के फूलों की बन्धनचारे भी टाँची जाती हैं। मंच की लम्बाई और चौड़ाई का प्रमाण आवश्यकतानुसार बटामा-बड़ाया जा सकता है। इस प्रकार सज्जित मंच यद्यपि चारों ओर से घुसा होता है किन्तु उसकी मुरछा कि हेतु ग्राम व्यवस्था की जाती है जो माच की परम्परा में अपना वैशिष्ट्य रखती है।

मंच-व्यवस्था के अनुपादनार्थ माच-मंच के दोनों ओर दो-दो पाट और सामने बेदी के चार गम्मे गाड़े जाते हैं। चार गम्मे के निकट १६ घुबक १ जमादार, १ चानेदार, और १ बाघणाह बैठते हैं। यह योजना माच क सीम्पवे में उत्कर्ष प्रदान करती है। घुब के पाट ‘बारह पाट के पाट’ कहलाते हैं। जहाँ माच-मण्डली के कुछ विरासत पान कार्यकर्ता और अभिनेता माच-नाट्य के अभिनय में व्यस्त रहते हैं। इसी तरह बारह पाट के चारों के पास एक ‘टेक का पाट’ भी व्यवस्थित रहता है, जिस पर अभिनेताओं के बीच खेलने के लिये कुछ व्यक्ति बैठते हैं और सामूहिक स्वर में ‘बाप’ और ‘टेक’ बुढ़ाने हैं जिससे गाने हुए अभिनय की कुछ विधायक कर व्यवहार मिल जाता है।

१ मालवी में मंच शब्द के तीन और तत्सम रूप विद्यमान हैं पर उनके अर्थ भिन्न हैं यथा—‘मचान’ (मचन निर्माण के हेतु तहारे के लिये बाँचा जानेवाला तत्सम एवं लेख में रचवानी के लिये चार बस्तरियों पर आधारित ‘डापला’), ‘माचा’ (बैठने की जगह जटिया) और ‘माची’ (बैठने की छोटी लटोनी)।

मंच के एक छोर कुछ अनुमयी कुंडयन बैठते हैं। यदि बोम में कोई मूस हुई घबरा होमक की बाप में बृष्टि हुई या धमिनेता के पह-संचालन या हाच-माच में कहीं घबस्मइता आई तो वे संकेतों द्वारा सचेत करते हैं। माच के प्रवेता युव का घासन भी माच-मंच के एक छोर होता है जिस पर कोई बैठता नहीं। घट यह व्यवस्था एक प्रकार से निर्दोषन के रूप में है।

प्रकाश के लिये मद्यालची घपनी मद्यालों की मंच के तीन लम्बों पर सजा कर घपना उत्तरावित्त निघाता है। तमिक भी मद्याल में प्रकाश का घभाष हुआ नहीं कि वह उठ कर टेस में बसते हुए बसबटे निघी देता है। धाबुमिक युव में बही बिद्युत घबरा बैठ-बसी (पेट्रोमेकस) उपमण्य है बही मद्यालों की घावस्यकता नहीं पकृती। माच-मंच की इस व्यवस्था में रंघसाना का कोई स्थान नहीं क्योंकि संबंधित याच मंच के निकट किसी स्थान में घपने नस्वादि परिचलित कर या जाते हैं। मंच बादों घोर से कुत्ता होने के कारण नेपथ्य नहीं होता। बर्दकयच बही से भी बैठ कर सम्पूर्ण गतिविधि देख सकते हैं, तो भी (हेलिये माच-मंच का रेखाचित्र) बुमिघा के लिये बर्दकों को तीन घोर ही बैठने दिया जाता है।



मद्याल के माच-मंचन के निर्माण का विधान घपने 'माच-म्याल' (ई० पू द्वितीय घतासी) के द्वितीय घप्याय में बिस्तार से दिया है। उनमें बिहृष्ट अनुज घोर घ्यस—तीन प्रकार के मद्यालों का उल्लेख किया गया है। प्रथम देवताओं के लिये घोर घेन की प्रकार मनुष्यों के लिये है। धमिम 'म्याल' अनमाधारन का मद्याल है। मद्याल 'मनुष्य' ही मद्याल की बृष्टि में उत्तम है तथापि बपमेदानुसार मद्याल के







घारम्भ किया था। कलाविद् संवत् १९०१ के पूर्व श्यानों से एक बड़ा जनसमूह में। बिठ हो चुका होगा। यही कारण है कि मुबबरी न राजस्वान् यबुरा धायरा कतकता बम्बई धादि स्थानों की जनता को जब श्यानों के रंग में रंगा देता तो उसके डंभ की अपनी स्थानीय परम्परा के संयोग से धपना कर भाव का उत्पन्न किया। श्यास यद्यपि निमित्त डंभ की रचना है तो भी उसके पुष् में भाव पाता और भलाई का प्रभाव निस्संदेह रहा होगा। यों स्पूस रूप में क्या और भाव में बाह्य भेद नहीं है। तथापि उसके अन्तर को स्पष्ट करने के लिये निम्नलिखित अक्षान्तर भेद वृष्ट्य है।

**घारम्भ की भूमिका और सामान्य सहाण**

- (स) श्यास १ मयी पात्र मंच से अन्तर्गति की धाय स्थान पर मनेष एवं सरस्वती की समवेत स्वर में स्तुति करते हैं।
- २ मंच की मलाई के लिये श्यास (अभिनेता) का धायमन होता है जो धपना परिचय का कर स्वयं ही देता है।
- ३ मिश्री धा कर जन से मंच पर धिड़काव करता है वह भी गीत बढ भाव कहता है।
- ४ हलकारा धा कर प्रधान नायक के धायमन की सूचना देता है। वह मंच गङ्ग बंगाने से धाता है। (धाय हलकारा गौरी चन्द का मङ्ग बंगाने से—'राजा गौरीचन्द का श्यास अम्बराम मीमच वाला डूठ।) हलकारा ही श्यासकार का परिचय देता है। इसी धायरी के बाद श्यास का धारम्भ होता है।

- भाव** १ भाव-मंच पर ही समस्त अभिनेताओं और कार्यकर्ताओं द्वारा मनेष मेकरी एवं भावकार की बन्दना की जाती है। साथ ही गयर के प्रमुख देवताओं की समवेत स्वर में स्तुति की जाती धायमक है।
- २ भाव में श्यास नहीं धाता।
- ३ मिश्री धा कर मंच पर अभिनयारम्भ डंभ से धिड़काव करता है। वह तुरंत भूगानी मिश्री कहता है।

“धाय हूँ भूगानी मिश्री। भूगान मेरा नाम कर धाय। अग्नेय मेरा देगु गा बस्ती। धाय हूँ।”

“धर भरवा मा पानी

छानी कर मायो रे गमन्दर तीर से

माता की गूदी भवत बनी रे

कंचन डोच मङ्गाया।

१ ‘भूगानी मिश्री’ का अभिप्राय संप्रथम धीम धष्टे तक चलता है। इन धीम भाव की धाय धायरका संप्रथम कर ली जाती है। यों तो मिश्री धपने भाव के श्रुतीतरी को धपने डोल के डो घूट न तीमर्य का धाय करतता है कर भाव के धनिय धनियों का कहता है कि ‘भूगानी—धुमकी की बालनेबाला राजा डूठ है। उनी का धर धनिय मिश्री धा कर धिड़काव करता है। धरौंरि बहू भाव होता है बहू देवताओं का धायमन तीमच है।

२ धुब बालनडूठ हल नागरी धुबरी तीतरी धायरति सं० १९८३ वृष्ट ३।

झूठी मयक का घाती जो पीस

‘बा घर कर घूँ माया ।’”

- ४ मिट्टी के बाँ- करसुन घाती ही जो रा कर मायकार मूक की स्तुति करती है एवं मंच पर कर्ज का जायम बिछाने का अभिप्राय करती है। उसके बीज भी लपकन आवा मचने तक बसने हैं। वह अपनी व्यक्तित्व बात भी कहती है जिससे कि उसके विषय में सर्कों की सहानुभूति नहीं रहे —

“घनी म्हाय पिपुजी गया परदेस जायम का बिछवाँजी।

चोटा सरीका बठिनी हमाय धूरज सरको ठेक।

नर्नर हमारी बड़क लीबरी बमके चारी देन।

हाम लये हिवड़ो कुमसावे म्हारी मायक मसवी ।”

- ५ इसके पश्चात् विशेष धीर देवी की बन्दबा। देवी के पंढ का धाग-मन धीर किन् स्वयं देवी का धागमन धीर आधीबाँह के बाह मूक की मय के साथ माघ का आरम्भ।

- ६ माघ का आरम्भ आरम्भ ही बाटकीय होता है। पूजन के पश्चात् प्रत्येक पात्र क्रमशः मंच पर आता है उस समय ‘बोवहार’ उसका परिचय देता है।

मातवा के सीमाकर्तों दोनों में माघ का स्वरूप कुछ भिन्न हो गया है। उसमें माघ आरम्भ करने के पूर्व सभी पात्र मंच पर आकर बैठ जाते हैं तब किसी निश्चिन्ता उच्च मूमि से एक व्यक्ति संन्यासधर जिसे ‘बन्नाम’ कहते हैं, आरम्भ करता है धीरे से सब उठे समवेत स्वर में बुझाते हैं।

इन माघों में कुछ धरती विनोदगर्ह है। माघ के प्रणयन-कर्तृ अपने हावों में माघ की लिखी हुई बहिष्ता जिसे अभिनेता के पीछ बसते हैं। वे मंच पर ही बड़ी में से पंक्तिजों बोझते हैं और अभिनेता माघ पर उन्हें बोझाते हैं। माघ का यह स्वरूप अब मूल्य हो रहा है। इनमिय कुछ नार्मित धरती में इनका रूप बाल पड़ता है। मध्यवर्ती मातवा में उपरोक्त कम से ही माघ किये जाते हैं।

(मा) १ उक्त मूमिका के पश्चात् दोनों में प्रथम मायक आ कर अपना आत्म-परिचय देता है। उसके पश्चात् क्रमशः अन्य पात्र आते हैं जिनमें माघ मातवा ब्याप की कथावस्तु सुनने मसती है।

- २ बानों ही मंचीत प्रथम रचनाएँ हैं। संदीत की दृष्टि से स्थान में मायगी, राम रतवा बिहाय भाइ (जंगली टर) काड़ी लोख घारंगी जंगली बरको घमावरी कमिपका धैरवी घाहि रापों में टेर (कथापकथन) शायी जाती है। माघ की भूमि ‘पेपत’ बह-साली है जिसका आये उल्लेख किया जायगा।

- ३ बानों के बमोपक्रम नीति प्रथम धीरे मंथित होते हैं। राम-रामनियों से ही उन्हें विन्यास प्राप्त होता है।

१ मूक मातमूकह इत मायगी बूझती लीबरी आधुति सं० १९५२, पृष्ठ ३।

२ बही

३ रामादिजान मूक की परम्परा में मातवा आ कर कुल बिछानी है।

४ आरम्भ की पीनों की एक लीनी भी ‘बन्नाम’ कहलाती है जिसकी प्रमुख शैक—‘इतराई करतार फिर नहीं बोलपा।

- ४ दोनों में अभिनय की अपेक्षा संवादों का महत्त्व प्रधान है।
- ५ अभिनेता अपने डब के अभिनय के लिये स्मृत है। अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिये अभिनेता लोक मंथीय 'बुब' (मेह) रखते हैं। अभिनेता 'स्वल्प' कहलाते हैं। कहीं उन्हें 'स्वाय' और 'स्व' भी कहते हैं। प्रायः सभी व्यक्ति साधारण समाज के होते हैं।
- ६ दोनों की कथावस्तु—पौराणिक ऐतिहासिक और प्रायः लौकिक एवं धर्मऐतिहासिक होती है। अन्त सुसाम्य होता है।
- ७ दोनों में नेपथ्य का अभाव है और दृश्य-परिवर्तन क्रमशः और अल्प संकेतों से समझे जाते हैं।
- ८ दोनों मध्य रात्रि में आरम्भ होकर सूरज की प्रथम किरण के साथ समाप्त होते हैं।
- ९ दोनों में संकीर्ण के साथ सामूहिक और व्यक्ति मूल्य की परम्परा विद्यमान है। 'सम' की भाव पर एक सटके के साथ अभिनेता नाच की गति में प्रवेश करते हैं।

यह सम्भावना व्यक्त की गई है कि क्याल का आरम्भ धावण के निकट १५वीं शताब्दी के आरम्भ में एक नई कविता शैली के रूप में हुआ है। किन्तु क्याल का राजस्थान से विशेष संबंध है। धावकल राजस्थानी में मिले हुए अनेक क्यालों की पुस्तकें देखने में आती हैं। सम्भवतः राजस्थान में लोक-प्रशसित कबालकों की विपुलता एवं चारण और बाटों द्वारा उनके प्रचार, प्रक्षय तथा प्रोत्साहन से बाद में यह काव्यशैली अधिव्यंजना के रूप में अपना ली गई हो। राजस्थान में नाचकों की पेशेवर जातियों से इसकी गति प्राप्त हुई होगी और फिर सोमों द्वारा प्रभावित जाने से स्वाभाविक रूप से प्रचार में सहायता भी मिली हो। यह स्पष्ट है कि सोचबनी को प्रभावित करने वाले साधन प्राप्त की सीमा नाच जाते हैं। क्याल भी नाच की गति भावना और निकटवर्ती प्रान्तों में जूझ प्रसिद्ध हुए।

युव बालमुकुन्द की तरह क्याल के क्षेत्र में नानूचम का नाम विशेष उल्लेखनीय है। नानूचम खेडावडी के बिड़ावा का निवासी था। युव की गति वह स्वयं मंच पर उतरता और अपनी मंडली को उचित निर्देशन दिया करता था। उसके बनावे हुए संग्राम १० क्यालों का पता चला है।<sup>१</sup> नानू का समकालीन उजीठ तेली या बिसने १० क्याल बनाये।<sup>२</sup> अन्य क्यालकारों में सामाचम 'निर्मल' मूबरमत मिशर, प्रेममुख मोरक के नाम प्रायः मिले जाते हैं। नाच के प्रोत्साहन में क्यालकारों की परम्परा का निरन्तर ही हाथ रहा है। नाच के लक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है।

### नाच और रास

नाच यद्यपि क्याल के बहुत निकट है किन्तु मध्यकालीन परम्पराओं से तनिक भीछे हटते ही रास की ओर सामग्री उपलब्ध हुई है उसका यथोचित अध्ययन हमारी

१ देखिये लोक कला (भाग १ खंड १) में मनोहर शर्मा द्वारा प्रस्तुत सूची, पृ० ४४ अपरचय नाहदा की अंक १ में प्रस्तुत सूची भी देखिये पृ० ८६-१०४। (परिशिष्ट में उद्धृत)।

२ प्रेरणा अक्टूबर १९५४ में जी गीण्डाराम वर्मा का 'खेडावडी में नाच क्याल'—दीर्घक लेख पृ० ८०-८१।

सोक-नाट्य परम्परा की श्रृंखला को दूर तक पीछे ले जाया है। १७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सोक-मनोरंजन के लिये रास चर्चरो, कानू भाषि सीसी में सीति-नाट्य की रचना की जाती थी। इन नाट्यों का अभिनय उसी भाँति किया जाता था जिस तरह कुछ हेर-फेर के साथ माघ में देखा जाता है। यद्यपि माघ की परम्परा उसके नाम के अनुसार इसकी पीछे नहीं जाती तथापि सीसी धाम्य की दृष्टि से माघ उक्त परम्पराओं से हट कर स्वतंत्र रूप में विकसित परम्परा भी हो नहीं सकती था सक्ती है। उसे ही लोकगीतों सीति नाट्य सीसी कहना ही उपयुक्त होगा। अतः ने नाटक को ‘अद्वितीय कमिष्णयान् दुस्त्रं जगत् न बन्धयेत्’ कहकर नहीं बात कही है, जो माघ पर भी गठित होती है।

६. ‘तिरी भूमिम् कानू’ की कथा को स्कूल रूप से देखें तो उसे ‘भाषों’ में विभक्त किया गया है। प्रत्येक भाग के अन्त में ‘बरा’ द्वारा कथा को विराम दिया जाता है। चूँकि माघ रास में कथावस्तु होती है और वेपठा के साथ वे नाट्य रूपक है, अतः उदाहरणार्थ भाषों के विरामजनक क्रम को यहाँ देना उचित होगा —

- भास १ संघताचरण, भूमिम् का घट-स्तवण बैसा के सर्वप्रथम का बह होकर अवगमन तक का वर्णन।  
 भास २ स्कूलमित्र का रंजिता में प्रवेश और यहाँ का बाह बिज।  
 भास ३ ४ कोषा के गन्धर्व्य सीत्य का वर्णन।  
 भास ५ मुनि को लुप्ताने के लिये कोषा के हाव-भाव का वर्णन।  
 भास ६ मुनि की पारिविक दुःखता एवं संघम की घटबटा।  
 भास ७ उपसंहार, काम-विजय और बैसताओं द्वारा पुष्प-दृष्टि, मृग-वापन के समाप्ति।<sup>१</sup>

माघ और रास में निम्नलिखित तुलनात्मक मध्यम उल्लेखनीय हैं —

- १ रास में केवल पञ्चायक संवाद योजना है। यद्यपि रास में अल्प काव्य की प्रतीति होती है जबकि माघ में यह स्पष्टीकरण संवाद (बोल) और मौखिक राजों के निर्देश के कारण नहीं होता अतः इस योजना के संपूर्ण संकेत निहित है।
- २ रास अभिर्वाच में यूरोप के ‘मिराकल’ या ‘मिस्टिक प्लेज’ की भाँति है जिनमें धीमद्वारावत की कथाएँ विभिन्न सीताओं के रूप में की जाती हैं। इनका अभिनय मन्त्रियों या अन्य पवित्र स्थानों में किया जाता था। माघ ने मौखिक प्रेम-कथाओं का धाम्य दिया इसीनिम्ने उनका अभिनय मन्त्रियों में न होकर लुप्त एवं सर्वसाधारण स्थानों में किया जाने लगा।
- ३ यात्रा रामलीला और रास के कथानक धार्मिक दृष्टियों पर आधारित हैं और माघ की भाँति उनमें लोक-संघीत का प्राबल्य प्रचलित है किन्तु सीत-संवागों द्वारा कथानक की मूल बहना कायम करने के लिये सूत्रधार पाठोपाठ रस पर चला है जिसका माघ में धरावा होता है। माघ में पात्र अपने संवाद की समाप्ति पर स्वयं हटकर एक

१ माधरी प्रचारिका पत्रिका, वर्ष ४८, पृष्ठ १ २०११ में ‘तिरी भूमिम् कानू’ लेख, पृष्ठ २३।

घोर लड़े हो जाते हैं घोर घमघमा के आत्म के विषे संभ पर स्वाग होते हैं।

इसमें समझ नहीं कि अप्रत्यक्ष रूप से राज ने माघ की प्रभावित व्यवस्था किया है। पद्यद्वय नाटकीय प्राचीन परम्परा सोकपर्वी रही है। यही कारण है कि प्राच्युक्त युग में कीर्ति-माद्यों का स्वभाव एक प्रकार से नाटक के क्षेत्र में जमा था रहा है। माघा प्रभाव राज-परम्परा ने प्रत्येक प्रांत के नाट्य साहित्य को प्रभावित किया है। इन प्रभाव से क्या ही घोर माघ प्रभाव नहीं रहे।

## माघ के प्रवर्तक

### १ बालमुकुन्द गुरु

माघवा में प्रवर्तित माघ के धार्मिक प्रवर्तक व्यवस्था निवासी बालमुकुन्द गुरु हैं। किशोरावस्था में के अनुसार गुरु बालमुकुन्द उन्नीस के भागसीपुरे में 'क्यास' देखन आया करते थे। उन दिनों नगर का आकर्षण इन्हीं क्यासों में केन्द्रित हो रहा था। एक दिन भीड़ घबड़ाने के कारण उल्लुक्तावस्था में संभ के एक घोर पर का बैठे पर कुछ कार्यकर्ताओं ने उन्हें वहाँ से उठा दिया। अवमान का कड़वा घूट पी कर घावेस में उन्होंने नगर के हस्तावर में बड़क श्रेष्ठ की दृष्ट साधना की शिक्षा संभ उन्होंने सुखदाम यत्री से प्राप्त किया था। कहते हैं साधना से प्रसन्न हो कर भक्त ने वर्तन दिये उन्होंने धर्म और काम्य ज्ञान का बरतान माँगा। संवत् १६०१ 'सरमल हिरण्य' भाषी (सरस्वती हृदय में भाषी) और गुरु जी ने माघ रचना आरम्भ किया। इस किशोरावस्था से यह प्रकट है कि बालमुकुन्द गुरु के पूर्व अपने प्राचीन रूप में माघवा में रंगमंच का ब्रह्मदेव प्रेरणा प्राप्त कर गुरु की प्रतिभा ने उसका नया स्वभाव अभिव्यक्ति किया। मुसलमानों के शासन के पूर्व ऐसे संभों के संभव में कोई श्रवणद सामग्री के प्रभाववश इस विषय में प्रकाश सामना माघ अनुमान गम्य है। अतएव माघ के उत्थान में प्राचीन संभ की स्थिति का वास्तविक आकलन करना कठिन है।

१६वीं शताब्दी के द्वितीय-तृतीय चरण हिन्दी के ऐतिहासिक पठनोन्मुखी समय के सूचक है। राज-दरबारों की विनाशिता भक्ति पर हावी हो कर अपने विद्युत् श्रुतारी रूप में उभर रही थी। धार्मिक संघर्ष नहीं था। जो भी संभों का प्रभाव आरम्भ हो गया था। लोग आते-जाते मुन्नी थे। वैवाहिक संघर्ष के प्रभाव में खाना-कमाना धान्य करना और जीवन के अन्त समय में भाव्य विस्तार कर लेने में इच्छा थी। माघवा आरम्भ से ही उपजाऊ रहा है अतः यही भी भूमि से जाति और भी बूर थी। ठीक ऐसे समय बालमुकुन्द गुरु ने माघवा के माध्यम से सोकपर्वी के उद्भव को लेकर माघ नाम नाट्य क्षेत्री का प्रवर्तन किया। भक्ति वैराग्य श्रुतार और वीरवेम माघनाथों का लोकप्राप्ति रूप उनकी रचनाओं में लक्षित हुआ। आरम्भ में बिन पाँच भाषों को उन्होंने रचा है। उनमें उन्होंने 'मिथुनी कपी' है अर्थात् उनकी पृष्ठ भूमि मिथुनी कपा-वस्तु से संबंधित है।

### रचनाएँ

गुरु बालमुकुन्द ने कुल १९ भाषों की रचना की है जो क्रमशः लेते जाते हैं और जिसमें स्वयं गुरुजी मुख्य पात्र का अभिनय करते थे। माघ भी उन्हीं के संघर्षों

में बयोद्विही इस पात्रता का अधिकारी है। उक्त सोमहों रचनाओं की मूल प्रतियाँ मुद्रणी की जैसी पीढ़ी के पास सुरक्षित हैं।

आगेवालों के आरम्भ होने ही मुद्रणी ने माघों की मूल प्रतियाँ बाजार में ला गईं। यह बीमवी घाटाणी के प्रथम बसक के पश्चात् ही सम्भव हुआ। मद्यपि उज्जयिनी में माघ के लेखों की प्रतियाँ मंत्र १६८२ के समय छपाकर प्रकाशित हुईं, पर इसके पूर्व इन्दौर के किसी मुद्रणालय द्वारा इन्हीं माघों की प्रतियाँ मुद्रित कर प्रकाशित की जा चुकी थी। कहते हैं उज्जयिनी में भी मंत्र १६२० के समय माघ के लेख छपाकर बेचे जाते थे पर उभका कोई ठोस प्रमाण नहीं है। उज्जयिनी के ‘धामिधाम बुक्सलेटर’ ने मुद्र के कुछ माघ २० X ३० की साइज में मलय-मलय छापे हैं। ‘यज्ञा हरिचन्द्र’ (जो पुस्तकालय मंत्र १६८२ में प्रथम बार मुद्रित हुआ) के अन्तिम पृष्ठ पर प्रकाशक ने लिखा है—‘अपर हो कि जो लेख पहले छपे थे उस से इन्दौर वाले ने ऐसे छपाये सो वह सत बमलभ है। कहीं न कहीं नहीं मिलती कश्चि बंदी से मल कहीं दूर है। किरर का हूप किरर का पाँच किरर का बड़ किरर का मुँह लगा कर पूरा लेख ऐसा नाम बरके लोगों को बोला वेन बास्ते छपाया है।’

इस प्रगट होगा है कि मंत्र १६८२ के पूर्व धामिधाम बुक्सलेटर ने भी माघ की कुछ पुस्तकें प्रकाश की थीं। माघ के अत्यधिक लोकप्रिय होने के कारण ही इन्दौर का कोई बुक्सलेटर उन्हें छापकर बेचने का जोर संलग्न नहीं कर सका। ‘माघजी दूधजी की दो उभ मंत्र में हीमरी धावृत्ति प्रकाशित हो गई थी। उसमें भी उक्त सूचना मिली है।

बालमुकुन्द मुद्र के उपलब्ध माघों की प्रतियों के आधार पर निम्न सूची मंत्र एवं धावृत्ति संख्या सहित दी जा रही है —

माघ	प्रकाशक
१ यज्ञा हरिचन्द्र धावृत्ति प्रथम मंत्र १६८२ धामिधाम बुक्सलेटर उज्जैन	
२ माघजी दूधजी " तृतीय १६८२ " " "	
३ बाला माघजी " छठी १६८३ " " "	
४ मलय मंत्रापुरी " प्रथम १६६० " " "	
५ रामजीला " प्रथम १६८२ " " "	
६ कुँवर पंमसिंह " प्रथम १६८२ " " "	
७ छठ छठानी " अष्टम २ ०७ " " "	
८ देवर भीमई " दसवीं २००६ " " "	
९ यज्ञा मरपरी " दसवीं २००६ " " "	
१० मुकुन्द धामिधाम " दसवीं २००६ " " "	
११ हूपमीला	अप्रकाशित
१२ छेन पावठ	"
१३ चारम बंजारा	"
१४ हीर मंसा	"
१५ गिरणीला	"
१६ बंजारा पञ्चमी	"

१ परिशिष्ट में संश्लेषिका प्रस्तुत है।

गुरु बालमुकुन्द ने अपने सभी भावों का अभिनय सञ्जयिनी के अवसिष्ठपुरा में किया। आज भी वही उही स्थान पर बालमुकुन्द गुरु की परम्परा के माच होते हैं। यह स्थान उस भैरव मन्दिर के सम्मुख है जिसे स्वयं गुरुजी ने बनवाया था। प्रत्येक माच के प्रारम्भ में ही यह 'भैरवी की स्तुति' में इसका ससेल है।<sup>१</sup> अवसिष्ठपुरा भावों के कारण गुरुजी के समय एक महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया था। माच के आकर्षण से बार्कों की एक बड़ी भीड़ वहाँ बिबा करती थी। अपने एक पात्र द्वारा स्वयं गुरुजी ने इस बात को व्यक्त किया है—

“मोवात रौर से चल कर आयो जगदीन रौर बैजूभावली।

जैतिपुरा में जाच बच्चो है धुलकों की घालन बी कसती।”

गुरु बालमुकुन्दजी के जीवन-काल में ही माच का प्रचार दूर-दूर तक हो गया था। उनकी मूल प्रतिमिति करके जहाँ के विप्य गाँव-गाँव में फैल गये। अत्युक्ति न समझी जाये तो परम्परा हामरत और पंजाबी तक पहुँची। गुरु के समकालीन सिधिया नरेश (महाराजी सिधिया) ने तो उन्हें व्यासिपर में आमन्त्रण कर माच का अभिनय करवाया था। निकटवर्ती होल्कर नरेश ने उनके भावों से प्रभावित होकर बहुत सी भूमि दान में दी थी।

गुरु बालमुकुन्दजी की मृत्यु संवत् १८३० में रविवार के दिन हुई।<sup>१</sup> कहते हैं उस समय वे 'बैरावरी' का अभिनय कर रहे थे। अन्धविश्वासी लोग बैरावरी को ही गुरु की मृत्यु का कारण समझते हैं। रात्रि से उठ कर ही उनके घर बकरीबं से जाया गया। घर-मात्रा के समय धर्मी के भावे-भावों उनके विप्य माच पाते हुए बसने लगे। माच के संगीत से ही उनके घर का अग्नि-संस्कार किया गया। माच की प्रसिद्धि और माचकार के सम्मान का इससे बड़ा उदाहरण क्या ही सकता है?

गुरु का कण्ठ लुगा हुआ और श्वासी था। अभिनय के समय उनकी बाजी और व्यक्तित्व लोक-हृदय को प्रभावित करने में बेजोड़ थे। माच के प्रदर्शन के रूप में गुरु की साधना मातवी-मोक-नाट्य के क्षेत्र में अविस्मरणीय बटना है।

## २ कालूराम उस्ताद

बालमुकुन्द गुरु के भावों की लोकप्रियता ने जगदीन के प्रतिभाशाली कवि कालूराम उस्ताद को कुछ वर्षों के पश्चात् नवीन माच रचनाओं के लूजन की प्रेरणा प्रदान की।

- १ रैवीला है भैरव का व्यास  
सारदा बी हिरदा में ग्यान। डेक।  
विद्यात कब धौली-बी मुरत  
करो हुस्मन की हाव।  
जैतिपुरा में राज तनारी,  
घोर चारी बूँद में मान ॥  
काती बीरो पालक मेरी,  
खेत रच्या जोगान।  
तबि का लनयान जो देख  
मार दुख कू जान ॥ डेक ॥

२ सत्य हजिबान पृष्ठ २।

३ 'बालमुकुन्दजी संवत् १८३० साल में बीहुँठ को प्राप्त गये।'—नाट्यी गुरुजी, पृष्ठ ६८।

यह प्रेरणा वस्तुतः गुरु बालमुकुन्दजी की दूसरी पीढ़ी के साथ स्पर्धा के रूप में विकसित हुई। गुरु की मृत्यु के लगभग २० वर्ष के बाद हो कर भी अपनी प्रतिभा और परिष्कृत के आधार पर कामूराम उस्ताद ने अपनी रचनाओं का अभिनय-क्षेत्र उज्जयिनी के प्रीमथगज में बनाया। बीसवर्ष माघ के दूसरे घंटाड़े का स्वान इसलिये भी बना कि स्वयं उस्ताद उसी मोहल्ले में रहते थे वहाँ उनकी पीढ़ी के लोग भाव भी रहते हैं।

उनके मार्चों के नाम इस प्रकार हैं —

१ प्रह्लाद जीता	१ नागमयी
२ हरिचन्द्र	११ राजा बोरछनी
३ रामजीता	१२ सूरजकरण-बन्धकनी
४ विश्व मुकुटी	१३ बाल मुस्तानी
५ मधु मातली	१४ राजा रिछानु
६ चन्द्रकला	१५ इन्द्रधना
७ हीर रांछा	१६ छत्रीजी मटियारिन
८ निहलदे मुस्तान	१७ दिया चरिन
९ बाल घालनी	१८ हीर-मोटी

उक्त मार्चों का प्रचार बालमुकुन्द गुरु की रचनाओं के साथ होता गया। उक्त सभी रचनाएँ १९५० के पश्चात् आगामी ३५ वर्षों के बीच लिखी गई प्रतीत होती हैं। कहते हैं उस्ताद की कुछ और भी रचनाएँ हैं जो पूर्ण नहीं हैं और उनके बंधन साक्षिगाम जी के पास वे सब सुरक्षित हैं। कामूरामजी के मार्चों के प्रचार का कारण यह भी था कि उन्हें प्रथम बार बाबाजन नामक एक सुन्दर गायिका को मंच पर उतारा। बाबाजन अपनी सुस्पष्ट, ठोसी और मधुर स्वर के लिये प्रख्यात रहीं हैं। इस प्रकार कामूराम उस्ताद ने बालमुकुन्द गुरु की उस परम्परा को जो स्त्री-माघ को मंच के लिये बर्ज्य समझती थी तोड़ कर नया आकर्षण आयोजित करने में सफलता प्राप्त की।

कामूराम उस्ताद और बालमुकुन्द गुरु के अधिकार मार्चों की कथावस्तु में विशेष भेद नहीं है। गुरु की अपेक्षा उस्ताद की रचनाएँ मृदुपारी अधिक हैं। गुरु और उस्ताद में जो भेद है वही भेद रचनाओं की प्रवृत्तियों में लक्षित होता है।

कामूराम और बालमुकुन्द गुरु—दोनों प्रकांडे भाव तक सामीप्य जनता और नगर के लिये मनोरंजन के साधन बने हुए हैं। दोनों के बीच स्पर्धा संबंधी घनेक कथाएँ लोगों में प्रचलित हैं। यह स्पर्धा यहाँ तक बढ़ी कि एक-दूसरे के मंच से दोनों के बीच-बीच में पचपड़ अपमानजनक व्यंग्योक्तियाँ कही जाने लगीं।

कामूराम उस्ताद के प्रमुख साक्षियों में मुखबेब और पञ्चालाज लावनीबाब में काव्य प्रतिभा थी। उनकी घनेक कविताएँ मंच १९६६ के मिहस्व में छपाकर बहुत प्रसिद्ध हुई। उनमें तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक वायव्यता का प्रभाव स्पष्ट है तबका कामूराम उस्ताद की रचनाओं में भी धरात है।

† प्रकाशित।

१ ‘बाबाजन’ का २४ वर्ष की अवस्था में सन् १९४८ की १५ जनवरी को हैहाबतान हुआ। बिस्फी की एक रेकार्ड कम्पनी ने उसके बार रेकार्ड तैयार किये थे जो कामूराम जी के पुत्र साक्षिगाम जी के पास हैं। बाबाजन मर्दाना वस्त्र धारण करती और तिर-पर लाका बीया करती थी।



कामूरामजी का उपनाम 'दुर्बल' था। आपमें अभिनय की प्रतिभा न थी। केवल रचनाकार के नाते ही अपनी परम्परा चलाने में सफल हुए। समय-समय पर ४० वर्ष की अवस्था में आपकी मृत्यु हुई।

## ३ मेरू गुरु

कामूराम उस्ताद के समकालीन उज्जयिनी के ही नये पुरे का एक बस मेरू गुरु की प्रेरणा से अपनी प्रसंग परम्परा से कर माच लेने लगे। मेरू गुरु उचित १२ मार्चों की जानकारी डॉ० चिन्तामणी उपाध्याय को अपने अनुसंधान के क्रम में प्राप्त हुई है। उनके कथनानुसार जो पुस्तकें उन्होंने देतीं वे सभी हस्तलिखित एवं जीर्ण-शीर्ण प्रस्तावों में हैं। तबपुरा का बस मेरू गुरु के ३ बस तो प्रतिबिम्ब करता ही है, यद्यपि मार्चों की संख्या १२ है जो निम्नलिखित हैं —

१ गोपीचन्द्र	७ श्रीम बेटा मोयना
२ राजा विक्रमाजीत	८ चदन कुँवर
३ पुरबमम	९ शेमासिंह धाँवसदे
४ हीर-रांछा	१० मदन सेन
५ कुँवर बेखरी	११ सीता-हरण
६ लाल छेठ	१२ विद्यासन बत्तीसी

घटएव स्पष्ट है कि उक्त माच-रचनाकारों के नाम माच की बार परम्पराओं का प्रारम्भ उज्जयिनी में हुआ जो प्रायः भी विद्यमान है। उक्त १२ माच रचनाओं में निम्नलिखित कथाओं को जो या जो से अधिक रचयिताओं ने अपनाया है।

- १ हरिश्चन्द्र (बालमुकुन्द गुरु कामूराम उस्ताद)
- २ रामलीला ( )
- ३ हीर-रांछा (बालमुकुन्द कामूराम मेरू राजाकिशन)
- ४ गोपीचन्द्र (मेरू धीर राजाकिशन)
- ५ शेमासिंह (बालमुकुन्द धीर मेरू)
- ६ विद्या चरित्र (कामूराम धीर राजाकिशन)

प्रायः सभी माचकारों की वही धीमी धीर वही मज है जो बालमुकुन्द गुरु में थी। इस बीच मालका के बूजर नौड़ी ने भी अपनी परम्परा चलाना चाही किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली।

## नये माचकार

'राजाकिशन गुरु की परम्परा में नार्जीसह उस्ताद ने (१) 'अभि महापद्म' और (२) 'सत्य नाट्यम की कथा' पर माच लिखे हैं। दूसरा माचकार सिद्धेश्वर सेन हैं, जिसने संवत् २०१० के मध्य (१) 'सत्यवासी हरिश्चन्द्र' (२) 'मल दमयन्ती' (३) 'मरविह मेहता' (नानीबाई की मामेरी) (४) 'मनस प्रह्लाद' (५) 'दयाराम गूजर धीर' (६) 'राजा रिताभू' दोनों की रचना नये ढंग से की है। राजाकिशन गुरु के माच के साथ कभी-कभी उक्त रचनाओं से किसी भी माच का अभिनय कर दिया जाता है। इन नये मार्चों में प्रगतीसत्ता का चमक भी स्पष्ट नहीं है यद्यपि कथार्थ प्रायः ज्वालनों में प्रभावित होती में लिखी गई है। इस परम्परा में 'ज्योतन शेरज की जय' बोली जाती है।

१ ज्योतन शेरज गुरु योश में बाबल धीर अभिनय।

हर बस हाथर रहे माच से से तीर कमान।

—स्तुति की संक्षिप्त

घान्य नये माचकारों में सेनापति परमार ने (१) ‘धुब प्रह्लाद’ एवं (२) ‘निहासदे’ की रचना की है। नीमच के क्यालकार रामजीलाल बन्धु, जालजी नन्धराम मुड़वेनाले रामरत्न दरक बड़नगर के शिवरामजी ध्यास भी उल्लेखनीय हैं। जहाँ तक परम्परा का प्रश्न है उत्तर बार परम्पराएँ ही मासमा की जनरति को प्रभावित किये हुए हैं। यद्यपि स्वयं कम से मासमा के माचों की प्रवृत्ति शृंगारी है तथापि धिमा के प्रभाव में सिद्धे गये स्थानीय भाषा के इस साहित्य का इसलिये महत्त्व अधिक है कि यह पिछले डेढ़ सौ वर्ष से लगभग ६०-७० लाख मासमी माया-मायी लोगों को सतत रूप से प्रभावित करता आ रहा है।

### वस्तु-विश्लेषण

कथा-वस्तु की दृष्टि से उपलब्ध माच-साहित्य (१) पौराणिक (२) प्रेम कथात्मक (३) ऐतिहासिक और लोक कथारमक है। ऐतिहासिक कथानकों में शृंगार परक वस्तु का बहुत महत्त्व है। सौर्य के साथ प्रेम की व्यंजना कथानक का लक्षण है। धार्मिक वस्तु पौराणिक योद्धा के वस्तुवत् है। प्रेम कथारमक एक लोक कथात्मक माच स्वयं कम से लोक परक है, जिसका स्वस्म या तो पूर्व प्रचलित क्याल-परम्परा से लिया गया है अथवा किवदंतियों के आधार पर जिनकी रचना की गई है। ‘डोला मास्मी’ ऐतिहासिक और लोक-काव्य दोनों हैं। जालमुकुन्द गुड द्वारा प्रयुक्त कथावस्तु की स्वरूप स्पष्टता से ज्ञात होता है कि उन पर लोहबन के मचारी रचित डोला का धार्मिक प्रभाव पड़ा है। क्या की जो संक्षिप्त योजना मचारी के डोला में है वही संक्षिप्तता गुड के ‘डोला मास्मी’ में पाई जाती है, फिर मचारी का डोला निश्चय ही गुड के पूर्व की रचना है जो ब्रज-क्षेत्र में खूब प्रचलित रही है।<sup>१</sup> गुड का ‘डोला मास्मी’ राजस्थानी ‘डोला माक्य डूहा’ अथवा ‘सतीस वही लोफ-गीतों का परिचय’<sup>२</sup> में संक्षिप्त डोला अथवा ब्रज के डोला काव्य की आत्मा से अनुप्राणित संगीत नाट्य माच है। प्रस्तुत माच में क्या डोला के आगमन से आरंभ होती है। वह साङ्गी (झँगी) पर सवार हो कर जाता है। यद्यपि मंच पर साङ्गी नहीं होती केवल ‘बोल’ द्वारा उस साङ्गी का ‘आगम’ अनुमानित कर लिया जाता है। उभय भाग का वियोग तबे द्वारा खिन्न और रेवा द्वारा विघ्न पैदा करने की योजना की जाती है किन्तु वस्तु में सुखद मिलन में क्या समाप्त होती है। प्रभावित राजस्थानी डोला के समस्त उपकरण—रेवा डाढ़ी मुद्रा कच्छा आदि क्या में बोल प्रधान करते हैं। मासमी के इस माच में नल-नमयन्ती का प्रत्यक्ष अस्वाभाविक रूप के जुड़ गया है और डोला नल का पुत्र बताया गया है।

कथा के विस्तार का प्रभाव प्रायः सभी माच रचनाओं में है। ‘जागजी डूबडी’ ‘निहासदे सुस्तान’, ‘सुबदुब सासना’ ‘राजा भरवहरी’ आदि राजस्थानी क्याल के कथानकों का निर्माण क्याल के ढंग पर ही है। जानूप्रम उस्ताद के माचों में प्रायः सभी कथानक शृंगारी हैं और उनमें प्रेमाशयी भाषा की ‘मधुमानती’ ‘चमकता’ ‘हीर-पंखा’ ‘खेरी कथावस्तुओं का समुपयोग किया है। कुछ ऐसी कथाएँ हैं जो माच के पठितरिक्त क्यालों की रचनाएँ अधिक हैं। ‘राजा हरिचन्द्र’ ‘सिद्ध-सैठानी’ ‘डोला मास्मी’ ‘देवर भीवाई’ ‘सुबदुब सासना’ ‘राजा भरवहरी’ ‘चारन बनजार’ ‘हीर-पंखा’ आदि माचों की कथाओं

१ देखिये डा० लखेन्द्र का ‘ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन’—पृष्ठ १०६ और १०७।

२ क्यालाचरण डूबे—‘सतीसवही लोक गीतों का परिचय’।

पर की कुछ क्पास रचनाएँ मिलती हैं जिनमें इन क्पासों की लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है।

### चरित्र चित्रण

माच में चरित्र-चित्रण के विस्तार के सिधे मुख्य तथ्यों का सामय मेना सम्भव नहीं। संवीत सीरी की संवाद योजना प्रत्येक चरित्र की उठान के सिधे बाधन के कौशल पर ही निर्भर है। मंच पर जो पात्र प्रस्तुत गा जावे वही जनता की सहानुभूति प्राप्त कर लेता है। पात्र-परिचय की पद्धति कभी-कभी चरित्र की अन्य विषयताओं पर प्रकाश डालती है। प्राचीन यज्ञों में यह प्रवृत्ति विद्यमान थी। यद्यपि माच में चरित्र-चित्रण का विस्तार बड़ी ही मात्रा में संभव है।

### पात्र

माच के पात्र दो भाग में विभक्त हैं (१) स्त्री पात्र और (२) पुरुष पात्र। प्रायः प्रत्येक माच में पाँच स्त्री पात्रों का हीना अपेक्षित है। यद्यपि पुरुष पात्र की अपेक्षा स्त्री पात्र की संख्या कभी-कभी अधिक हो जाती है।

नायक का प्रमुख साथी घेरमारखा कहलाता है (बासमुकुन्द गुरु के साथी अंकारजी से)। घेरमारखा विद्रुपक का अभिनय भी करता है जिससे जनता का मनोरंजन होता रहे। नायक को विभाम देने के सिधे घेरमारखा नायक का प्रतिनिधित्व भी करता है। गुरु बासमुकुन्दजी के समय स्त्री पात्र अभिनयार्थ गोविन्दा लूका टोडुभास और सस्मन की ओरें प्रसिद्ध थी। रामाजी कोमी बेनिया बाह्यक और भागीरथ पन्ने ने भी माच में इस विधा में प्रसिद्धि प्राप्त की।

अभिनय के समय पात्र का प्रवेश पूर्वपात्र द्वारा ही सूचित किया जाता है। अन्तर्देशीय पात्र मंच के एक ओर बने रहते हैं। पात्र अपने बोल की समाप्ति पर स्वयं ही मंच के एक ओर जा बैठते हैं।

### संवाद

माच के संवाद जैसा कि ऊपर बताया गया 'बोल' कहलाते हैं। ये बोल गेव हैं। गद्यरमक संवाद माच में नहीं पाये जाते। प्रश्न भी पद्य-बद्ध होते हैं और उनके उत्तर भी।

### रस और व्यंग्य

माच के साहित्य में संवीत के अतिरिक्त बोल का विषय रस-भूटि का महत्वपूर्ण माध्यम है। मोठा लोक-साहित्य की सहज व्यंग्यारिणा के बीच बोल की प्रत्येक छंदन को ध्यान से सुनते हैं। साधारण उपमा कथक यमक और अनुप्रास के उदाहरण माच में मिलते हैं। कवच साधु और गुरुवार का समन्वय रस की दृष्टि से उत्तेजनीय है। घेरमारखा नामक पात्र बीच-बीच में हास्य-रस की सृष्टि करता है।

### मुख्य-योजना

मुख्य-योजना थोड़ा और पात्र दोनों के सिधे कल्पना-अर्थ वस्तु है। पर्वों के अभाव में मुख्य का सामास कभी-कभी संवादों द्वारा प्राप्त हो जाता है। अथवा माच कल्पना से मुख्य की मानसिक उद्घाटन की जाती है।

### माच की क्षमता

व्यंग्य का सात्व्य माच की अन्त-योजना और उन्म है। माच के सिधे बीच कोई निर्धारित अन्त नहीं है किन्तु उद्योगी विशेष संवीत सीरी ही उसके रस का आधार

है। यद्यपि ‘रंगतों’ के रूप में बुन की परिवर्तनशीलता व्यक्त होती है तथापि स्मर रचना की दृष्टि से माघ बुहों पर लिखे गये हैं। वृह ‘लगड़ी’ ‘चोकड़ी’ और ‘झुहरी’ रंगत में गये जाते हैं। ‘खेता’ की रंगत बुहों के बीच स्वर बदलने के लिये बसती है। वहाँ जोक-भीतों का प्रयोग होता है वहाँ वृहों की बंदिश नहीं रहती। परम्परागत बुन के बन्धन उसकी बन्धन की प्रभावित करते हैं। इस तरह के बीच केवल प्रसंग विषय के बीच में पाते हैं और जो सामूहिक स्वरों में ही गये जाते हैं। वहाँ के स्वल्प इस प्रकार हैं।

### ॥ रंगत बोहरी ॥

हूँ तो म्हारे तादा लौबनी तार। सत को करी सगी बिनगार ॥ टेक ॥  
पति हमारा सतबन्धी हरिचन्द सत की जाही कार। सत बरन की नाब  
बनई के उत्तरांग सत्वर पार ॥ १ ॥

टेक १५ भाषाएँ।

बोहा २९ भाषाएँ।

ये भी म्हारो पीसु पयो परबेल। जाबन कही बिजाबानी ॥ टेक ॥  
जाबन पर सतराबी गवरा सीनी बाबर बेस। सतिया और पुस्तकिया  
बेदे बुना बुनीबी सेन ॥ १ ॥

टेक ३५ भाषाएँ।

बोहा २६ और ३० भाषाएँ।

बोहरी की बुहरी बोहरी देखिये—

अभी सत का राजा सत की रानी  
सत का बीसें अस्तमान रानी  
अभी सत का मजन, सत का पानी  
सत की राजे बीसें रानी

भाषाएँ १६

भाषाएँ १४

और भी अन्य उद्धरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि माघ का बोहा २६ भाषा से ४० तक बढ़ता है।

टेक के बाद बोहों में संवाद (बाग) व्यवस्था होती है। प्रत्येक बोहे के बाद टेक बुहवाई जाती है। वहाँ तक हस्तलिखित पोथियों का प्रभन है, प्रत्येक प्रसंग के बोहों पर बुन का निर्देश लिखा मिलता है। कभी-कभी एक ही बोल में टेक भी बदल जाती है। माघ के संवाद के संबंध में उल्लेख करते हुए बताया गया है कि माघ की बगवत रंगतों के समुदाय बसती है। टेक से ही रंगत का स्वल्प ज्ञात होता है और अन्ततः बोहा बंध में बढ़ता है।

### संगीत-प्रकाश

होसक माघ का मुख्य भाग है। सारंगी उसकी सारंगिनी है। होसक की बाप और सारंगी की ‘मोहों’ पर होस (संवाद) की लयकारी गमकती है। ओठागम बास के ओठागम पर ‘कई’ की है (नवा नहीं है ?) यह कर श्रुम पठते हैं। बासमूकम गुब

बड़ने का बीका मिला और कुछ ठीके स्तर के लोगों का ध्यान इसकी ओर गया। पुरुषों स्वयं जिस भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं में करते थे वही ही भाषा और उन्हीं के ढंग के स्वरों का प्रयोग गीतों की के कबानकों में करने लगा।<sup>१</sup> १८वीं शताब्दी तक घाते घाते गीतों की समस्त उत्तर भारत में फैल चुकी थी। जहाँ-वहाँ लोक प्रचलित मनोरंजन के साधन विद्यमान थे उसका सम्पर्क गीतों की की प्रवृत्तियों से होने लगा। इसमिले घासे चल कर यदि गीतों की काफ़ी विस्तृत वस्तु बन गई तो आवश्यक ही क्या है।

उत्तर भारत में गीतों की को स्वांग या भगत भी कहते हैं। स्वांग ठेठ ग्रामीण मनोरंजन है। संत तुकाराम के समय महाराष्ट्र में स्वांगों का प्रचार था। शृंगारिकता प्रकटा फूहड़ क्रिय के अभिनय के कारण तुकाराम ने स्वांग का विरोध भी किया था। उनके समय सिक्कों का रूप बनाने की प्रथा होती ही थी जैसी बादकाले पुरुषों द्वारा स्वांग बनाने की। गीतों में मूखतासे तक सिक्कों के कपड़े पहन कर अभिनय के भिन्न मंच पर घाते हैं यह भी एक प्रकार का स्वांग ही है। "स्त्री रूप बैठनेस्वा नटाएँ ठोड़ चुका पाहुँ न" (स्त्री रूप धारण करनेवाले नट का मुँह तक न देखना चाहिये यह तुकाराम के एक प्रयोग में वर्णित है। भीपर स्वामी (१७वीं शताब्दी का धारण) रचित 'चिन्मयीनामृत' ग्रंथ में तो यहाँ तक कहा गया है कि पुरुष को स्त्री रूप में देखते ही स्नान करना चाहिये। ऐसा बैठने पर सब-यत्न होता है और रूप धारण करनेवाले तो स्त्री हो कर ही प्रण लेते हैं।<sup>२</sup>

इसके पूर्व भी स्वांग का उल्लेख हिन्दी में उपलब्ध है। सिद्ध कवियों में कच्छपा (१८वीं शताब्दी) ने और कबीर ने अपनी एक शाली में स्वांग का उल्लेख किया है। उत्तर भारत में बादकाल होम जाति द्वारा स्वांग करने की परम्परा है। कच्छपा ने घरी घाति की स्त्री होमनी का स्वांग के हेतु साक्षात् किया है—

"भाभी बीहि । लीए सब करिब न लीए निमिष कच्छपाजी जोई जग"

बायली बंधावली में भी समाजहीन द्वारा बिल्ली में एक बेस्वा बोमिन का स्वांग धारण करने पठाया जाती है। "पातुनि एक हुति बीमी बंधांगी । साह मजोर हुत बीहि मांगी ।" (बादसाह हुती कच्छ-१)। सिक्कों द्वारा रूप बनाने की प्रथा अब छूटने लगी है। इसीलिये पुरुषों द्वारा कमजोर स्त्री का स्वांग धारण करने का रिवाज कम पड़ा। इसके पारस में विनोद निहित है। पुरुष मनोरंजनार्थ स्त्री का स्वांग और स्त्री पुरुष का स्वांग बनाती है। स्त्री-स्वांग की प्रथा राजस्थान वंशाव मालवा और गुजरात की सिक्कों में अब भी बची हुई है, जो मनोरंजन के हेतु बिनाह घाति सामाजिक प्रवृत्तियों पर बुराई-दुस्वप्न की तत्काल धारि विभिन्न स्त्रियों में बीज पकती है।

मध्यवर्ती भारत के गाँवों में प्रायः बेड़ियों के 'रई' गाए हुए करते हैं। उस प्रवृत्ति पर गाँव के लोग हास्य प्रत्यक्ष करने के लिये स्वांग करते हैं। बेड़ियों की बीतों में स्वांग गायी है। ये स्वांग बीड़ी-बी वृत्तियों में होते हैं, जिनका प्रत्यक्ष हास्य और शृंगार की वृद्धि करना मात्र होता है। बेड़ियों का एक स्वांग बीत नीचिये —

१ हिन्दुस्तान साप्ताहिक : ६ सितम्बर, १९२७ : पृष्ठ २५।

२ "पुरुषों को स्त्री रूप देखता साधार । सबेले स्नान करावे ॥

पुरुषों को भारी रूप देखता । पाहुँकार जाती धन्य माता ।

रूप देखता ही लखता । जम्मा जम्मा स्त्री होय—।"





‘नीटंकी’ का एक दृश्य



सन में बस गई नीले

नैना रतनारे सुरत व्यामर्ल

राजा जिन मोई साब

कड़ गई लड़कपन की देहना

भिन मारी नैना बाप

बेबी लगे मोई जाने

राजा सब जिन स्ताव

कड़ गई लड़कपन की देहना ।—(बुध्मेनखण्ड)

सन् १९११ की 'इंडियन एंटीक्विरी' (बनबरी) की फाइलों में रामपरीब जीवे हाथ स्वांग की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। उनके अनुसार सन् १८१९ के घास-पास घम्बाघम नामक युवराजी ब्राह्मण ने जो सहारनपुर में रहा करते थे लगे डंग से स्त्रियों की रचना की। श्री हजरत घोषा ने एक बार्ता के आधार पर बीपचन्ध नामक एक स्वांगकार का उल्लेख किया है। कहते हैं इसका कमा संबंधी उत्कर्ष १९वीं शताब्दी के अन्त में हुआ। उसने श्रृंगारिकता का बहिष्कार किया और बीर-रस से परिपूर्ण स्त्रियों की रचना की जिन्हें उनके सिष्य रोहतक की ओर से गय वहाँ वे अब भी प्रचलित हैं।

अब की ओर जाने रंगमंच पर नीलंकी के डंग की भगत होती। डॉ० सत्येन्द्र का कथन है कि 'डंग' में दो प्रकार की भगत मिलती है—एक घागरा वाली और दूसरी हाबरस वाली। स्वांग भी हाबरस और रोहतक के मिला है। 'हाबरस की भगत' या नीलंकी का प्रचार नाचाघम ने किया। उनकी भगत के बीबीनों की पुस्तकें बाजार में मिलती हैं। ये बीबीने छोटी ताल के होते हैं। घागरा के बीबीम सम्पी तान के होते हैं। ऊँ का एक अर्थ है—'बहरे तबीन' (बहुर=छन्द तबीन=सम्पा) जो सम्पा होता है, घागरा की नीलंकीयों में बिछपव पाया जाता है। उनके बीबीने इसीमिये सम्पी तान के होते हैं। मानवा निमाड़ और राजस्थान में 'किमवी-नुरी' नामक लोकरंजन का एक काव्य संगीतबद्ध साधन प्रचलित है उसमें बीबीनों पर सावधियों की श्रृंगारिकता हावी हुई। उनमें चलनवाला संगीत प्रायः उन्ही डंग का मिलता है। 'बहरे तबीन' की एक पंक्ति है—

ये रावण तु बमकी विचलता किते,

मुसे मरने का जोको-धरतर ही लूँ। (नीलंकी रामायण)

भगतों में विविध प्रकार की लीलाएँ बनी जाती हैं। स्वांग का इनमें पूरी तरह से समावेश है। ऊँचे मंच पर ये भगतें गप्पाह तक बमकी हैं। नीलंकी में घास्त्रा-खंड का प्रयोग बीर-रस का उत्कर्ष प्रदान करने के लिये किया जाता है। भगतें भी वैसे ही घास्त्रा से प्रभावित हैं। अति प्रकार मोरध्वज हरिचन्द्र यादि बर्म प्रधान कथामक भगतों में प्रचलित हैं, उन्ही प्रकार आमघामय मकन पूरनमन तियाहूपोस यादि श्रृंगार कथानकों का वर्णन घास्त्रा के डंग पर इनमें मिलता है। 'बहुर तबीन' श्रृंगारी भावों को व्यक्त करने के लिये उपयुक्त है पर कई नीलंकीयों में कुछ यादि का वर्णन इसी छन्द में हुआ है। हाबरस की कई भगत-मंडलियाँ इन दिनों रामायणों से मिल चुकी हैं। यद्यपि स्वतंत्र भगाइये भी अपने-अपने दोष में गतिहीन हैं। जहाँ मंयोर वहाँ मिथित नाट्य परम्परा स्वाभाविक रूप से मंच पर भीन पड़ने लगी है।



गौरी की स्नान या भगत का मंत्र तुम्हें स्नान पर बनाया जाता है। मंत्र काकी जैसा बनाया जाता है। जैसी-जैसी वस्तुओं पर धारिणाने के ढंग का ढाँचा लगा कर पड़ा कर दिया जाता है। मंत्र के एक कोने में बरानों को लिखाते हुए मपाड़ेबाले बैठते हैं। मपाड़े की ध्वनि विशेष ढंग की होती है। जो इन्हीं ध्वनों से संबंध रखती है। मामला ने मान में जिस प्रकार डालक का प्रमुख है उसी प्रकार गौरी की मंत्राङ्गी का साम्राज्य है। गौरी की या भगत का अभिनय बेर रात्रि से आरम्भ हो कर प्रातःकाल तक चलता है। वही हाल मान का है। यहाँ कभी हाँड़ करने का प्रयोग या जाये वहाँ समय का यह बन्धन भी अपना बाँध छोड़ कर घाने बढ़ सकता है।

हाकरतबाले माचाराम का ऊपर जिक्र किया गया है। मोनों में यह व्यक्ति नत्वा के नाम से प्रख्यात है। नत्वा की रामायण गौरी की की जामी पहचानी वस्तु है। कहते हैं नत्वा ने लगभग बीस गौरीयाँ मिली हैं। अन्य गौरीयों के रचयिता कल्याण के तिरमोहन कानपुर के श्रीहृष्य पारेयाम कल्याणक तथा लम्बरार हैं। गौरीयों के घड़ाड़े में होड़ होती है पर इनमें मौलिकता बहुत कम देखने में आती है। प्रायः सभी के विषय मिलते-जुलते हैं। वही कथानक धीरे बहुत कुछ मिलते-जुलते संवाद। बीजाँ को छोड़-मराड़कर अपनी बगाने की प्रवृत्ति विद्यमान है। कतिपय कथानक उर्दू की कृपा से गौरीयों में स्नान या गये हैं। बाज ऐसे कथानकों से हिन्दी भाषा-भाषी सभी जन परिचित हैं। धीरी-करहाब मुस्ताना डाकू लैला-मजनू इन्वर-समा धारि ऐसे ही कथानक हैं। गृधर प्रधान कथानकों में लामारत प्रेमकुमारी पबानी का तथा प्राँब का जादू, जिया बरिज हराबि उम्मेदनीय है। कठपुतली के खेल का प्रसिद्ध 'धमरसिंह राठीर' बीर-रस का स्थान है। गौरी में यह इतिहास से अधिक निकट आ गया है। संक्षेप 'धमरसिंह राठीर जर्क धायरे की लड़ाई' के नाम से छपित गौरी बाजारों में मिल जाती है।

छपित पुस्तकों की प्रतियों में जो भाषा सामान्यतः उपलब्ध है वह ऐतिहासिक प्रवृत्तियों से पोषित एवं उच्च छावरी से अधिक प्रभावित है। प्रांतीय भाषाओं का प्रभाव अभिनय के प्रबल पर इन रचनाओं में लक्ष्यता है। राज की वस्तुओं में राज भाषा प्रयत्न पञ्जाब में पंजाबी का प्रभाव स्वाभाविक है। अभिनय के समय विविध पोषियाँ केवल सहायक भर होती हैं।

गौरी की स्नान या भगत तीनों एक ही वस्तु है। कही स्नान के नाम से गौरी विख्यात है, तो कहीं भगत के नाम से। स्नान की प्राचीनता में संदेह नहीं चलत मध्य काल की वस्तु है और गौरी प्राचीन सोच में ऐतिहासिक प्रवृत्ति प्रबल उसक छोड़े पहले की ऐहिक प्रवृत्तियों की निम्न-जुनी बात है। धमीर धुसरो की भाषा का प्रभाव गौरी में लक्षणीय है। बा निस्संदेह मुसलमानी प्रभाव का प्रतिकल प्रतीत होता है।



## भवाई

गुजराती और राजस्थानी मर्मर का पूर्वविहास 'भवाई' नाटकों से संबंधित है। प्रायः ही गुजरात और राजस्थान के बाँधों में भवाई मण्डलियाँ घूम कर खेल किया करती हैं। गुजरात में 'भवाई' बड़ा बड़ा और सामान्य कोटि का होता है। इसका अभिनय करने के लिये किसी भी ठेकी मूमि मंदिर अथवा घर के बगुन पर लोक-मंच प्रस्थाई रूप से बना लिया जाता है। भवाई नाटक न तो संस्कृत नाटकों की भाँति संकट होते हैं और न उनमें व्यक्तित्व कथा का उत्तरात्म ही पाया जाता है। भवाई की प्रसिद्धि तो उसकी बेध भूषा ईशिक जीवन से संबंधित जन्माष्टों का अभिनय और धार्मिक कथाओं के विवरास पर आधारित है। बोलीम व्यक्ति कथा तान कर बड़े हो जाते हैं तथा अपने मनारे और ऐव आवाज वाले बाँधों के साथ कभी सम्मिलित स्वर में या कभी स्वतंत्र रूप से आगेवेला या कर अभिनय करते हैं। प्रारम्भ में मणपति की बंदना भवाई का अभिचार्य संघ है। स्वयं मणपति मंच पर आते हैं उत्पन्नात् अभिनय प्रारम्भ होता है। स्त्रियों का अभिनय मुख्य ही करते हैं। आचारण जनता के लिये भवाई प्रबल मनो जन के माध्यम रहे हैं। उनमें व्यक्तीयता के प्रवेस के कारण जो भाषण एवं फूहड़ किस्म की बेधों का क्रम समारोह जब से होने लगा तभी से गुजरात के कविपय विद्वानों द्वारा इसका विरोध प्रारम्भ हुआ। पर भवाई प्रमा का बीरे-बीरे कम प्रभाव न केवल धार्मिक संमंच के कारण हुआ बरन विद्वानों द्वारा उसकी व्यक्तीयता के विरोध में जो धान्योत्पन्न उठ खड़ा हुआ वह भी एक कारण था। गुजरात में गणघोड़ भाई उदयराम ने भवाई की व्यक्तीयता गट्ट करने के लिये अनेक नये नाटक लिखे। किन्तु ऊपर की पर भवाई का यह विरोध उन को उसकी परम्परा से एकत्रन धन्य न कर सका। भवाई करनेवाले ठरवाजा जाति के लोगों की एक बड़ी संख्या यह काम फिर से करती रही। राजस्थान के भवाईयों के प्रति ऐसा कोई विरोध नहीं हुआ। भवाई जाति में अभिनय करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति एवं क्षमता रही है। लोक प्रबलित परम्परा का इस प्रकार सहज ही नोप होना संभव नहीं था। उसके अभिनय की परम्परात्मक प्रधामी और हास्य के लिए स्थायी विषयताओं को ले कर विद्वयक का अभिनय लोगों के मन में गहराई तक बैठे हुए थे। गुजराती में संस्कृत नाटकों का यह विद्वयक 'रंगमंच' कहा जाता है। भवाई की अधिकतम लक्ष्यता इस 'रंगमंच' पर निर्भर रखी है। नये मंच पर यही रंगमंच लोक-नाटकों के माध्यम से धन्य करित हुआ। गुजरात में गणघोड़ भाई उदयराम ने धार्मिक समारोह मर्मरासकर, मणिमार्द, ममुमार्द, विमाकर आदि ने मंच के लिये नवीन नाटक लये पर जनमूमि में बिहुरि पाठे ईव उन्हें भी क्रमशः मंच से धन्य मर्मर विधिप करना पड़े। एक धारावी पूर्व बम्बई में 'मकर सित' का नाटक-बूह प्रारम्भ हुआ था। उसकी धार्मिक-महापट्टीय अभिनय पद्धति से संघ पाकर अनेक नाटककारों ने मोमनी उड़ाई। रमघोड़

भाई ने सन् १८६१ के पदवात् 'जयकुमारी-विजय' 'हरिचन्द्र' 'ललिता कुण्ड-वर्धन' आदि मिल कर भवाई के प्रभाव को कम करना चाहा। उनका यह प्रयास सफल था। एक ओर पारसी थियेट्रिकल कम्पनी के छात्र प्रभाव को मिटाना तथा दूसरी ओर भवाई देखनेवाले लोगों की रुचि को परिणत करना। इसी समय कुछ और गुजराती नाटक कम्पनियाँ स्थापित हुईं। सती झोरी भीराबाई नृसिंह महता बीवी कबाघों का बोल बाला था। इन नाटकों के प्रति प्रतिक्रिया कम न थी। इस प्रकार ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों का भी प्रवेश हुआ। एक ओर नगरों में गुजराती नाटकों का मंच विकसित हो रहा था तो दूसरी ओर भवाई की परम्परा अपनी स्वाभाविक गति संभल रही थी। साहित्यकारों के जन-सम्पर्क से घटित होकर काम करने की वृत्ति के कारण जो कुछ रमछोड़ भाई का स्वप्न था वह पूरा न हो सका।

कठिण विवेकताओं व कारण भवाई एक लोक-नृत्य का भी प्रकार माना जाता है। राजस्थान-मालका में गुजरात की छोर से जो जन-प्रवाह बहा उसने भवाई का प्रकार बुर-बुर तक किया। भारतीय लोक-नृत्यों के उद्धारक देवीमाल सागर ने भवाई को राजस्थान और मालका की उत्पत्ति बताया है। उन्होंने इस संबंध में एक कथा का उल्लेख करते हुए लिखा है "प्रायः से ४० वर्ष पूर्व जब राजस्थान के गाँवों में भी सांप्रदायिक और राष्ट्रीय मेरवाज के संस्कार उत्पन्न हुए अर्थात् के मेरवाज बड़े पारिवारिक जीवन में विस्तृतता उत्पन्न हुई कमा बिमास और व्यभिचार का साधन समझी गई, अर्थात् जाति के लोगों ने उसे विस्तार के योग्य समझ अपने से दूर ही रखा तो यह भावना गाँवों में सबसे अधिक राजपूतों और जाटों में देखी गई। यह सङ्कट जाति थी। नृत्य और गान को ये लोग शीघ्र और बीगता का धनु समझते थे। खेती करना और पशु पालना इनका मुख्य व्यवसाय था। इन्हीं जाटों में नागाजी नाम का एक जाट था जो कैकड़ी नामक स्थान में रहता था। इसे बचपन से ही नाचने गाने का शौक था। यह बात जानें को अच्छी नहीं लगी उन्होंने उसे तड़काड़ा नामा भूमल और बाबल देकर अपनी जाति से निकाल दिया और कहा कि तू धाव से ही हमारी जाति का नाङ्ग भवाई है और तुझे समस्त जाटों के मनोरंजन का अधिकार दिया जाता है। तब से नागाजी जाट और उसके परिवार वाले भवाई कहलाने लगे।"<sup>१</sup>

इस पद्धति का अनुसरण अनेक जातियों ने किया। नाच-बाने को अपने बीरव के विरक्त समझनेवासी उसक सामन्ती प्रभावों से मुक्त थी। पर भवाई जाति को कि इस प्रकार अनेक जातियों से छिद्रकृत हुई नाचने-गाने के लिये निकाले गये लोगों का संकटन की सामन्ती व्यवस्था से प्राबुध्वित वर्ग-भेद का परिणाम नहीं था सचमुचे है। निम्नवर्ग के लोगों ने भी अपने भवाई बनाए। जाट बाकड़ खोपी भील बूबर, मोहा कुमावत आदि जातियों के भवाई राजस्थान-मालका में पाये जाते हैं। मुजपट के (भवाई) नाट्य इन भवाईओं के नृत्य-नाटकों से काफी मिलते-जुलते हैं।

भवाई नृत्य नाटकों के कुछ नाम हैं—'बोरा बोरी' (बनियों का खेल) 'सुरदास' (धन्ने और कुचरिज साधू का खेल) 'डोकरी' (जिसमें बूढ़ा अपनी लड़की का बिनाह एक बूढ़ से करती है—समान की कुप्रथा पर हास्यात्मक व्यंग) 'साङ्गा-साङ्गी' (बो पत्नियों वाले प्रपेड़ की दुर्वृत्ति—बहु-विवाह का कुपरिणाम) 'संकरिया' (असहैसिदे



भयाई सोक-नृत्य

भाई ने सन् १८९१ के परभाव 'जयकुमारी-विजय' 'हरिविषय' 'ममिता बुद्ध-वर्चन' आदि मिल कर भवाई के प्रभाव को कम करना चाहा। उनका यह प्रयास बीतगया था। एक ओर भारतीय विपद्रिकस कम्पनी के आगत प्रभाव की मिटाया तथा दूसरी ओर भवाई देखनेवाले लोगों की रुचि को परिणत करना। इसी समय कुछ और गुजराती नाटक कम्पनियों स्थापित हुई। सती गौरी वीरभाई, नृसिंह मेहता जैसी नवाधों का बोल बामा था। इन नाटकों के प्रति मोहप्रियता कम न थी। इस प्रकार ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों का भी प्रवेश हुआ। एक ओर नगरों में गुजराती नाटकों का र्वक विकसित हो रहा था तो दूसरी ओर भवाई की परम्परा अपनी स्वाभाविक गति से चल रही थी। साहित्यकारों ने जन-सम्पर्क से घसप होकर काम करने की श्रुति के कारण जो कुछ रणझोड़ भाई का स्वप्न था वह पूरा नहीं सका।

कठिनय विधेयताओं के कारण 'भवाई' एक लोक-नृत्य का भी प्रकार माना जाता है। राजस्थान-मामवा में गुजरात की ओर से जो जन प्रवाह बहा उसने भवाई का प्रकार दूर-दूर तक बिखा। भारतीय लोक-नृत्यों के उद्धारक देवीदास खानर ने भवाई को राजस्थान और मामवा की उत्पत्ति बताया है। उन्होंने इस संबंध में एक कथा का उल्लेख करते हुए लिखा है "घाब से ४ वर्ष पूर्व जब राजस्थान के पोंनों में भी साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय मेघमाव के संकुर उत्पन्न हुए जैलगीर के मेरमाव बड़े पारि वारिक जीवन में विभूजनता उत्पन्न हुई कसा बिजाव और व्यविचार का सामन समझी गई, जैली जाति के लोगों ने उसे तिरस्कार के योग्य समझ अपने से दूर ही रखा तो यह भावना नाँनों में सबसे अधिक राजपूतों और जाटों में देखी गई। यह तड़ानू जाति थी। नृत्य और गान को वे लोग सीर्य और वीरता का धनु समझते थे। खेती करना और पशु पालना इनका मुख्य व्यवसाय था। इन्हीं जाटों में नापाबी नाम का एक जाट था जो कैकड़ी नामक स्थान में रहता था। इसे बचपन से ही नाचने बाने का शौक था। यह जाट जाटों को धम्भी नहीं लगी उन्होंने उसे नककाड़ा भासा मूंमल और जाबन देकर अपनी जाति से निकाम किया और कहा कि तू घाब से ही हमारी जाति का माड़ भवाई है और तुझे समस्त जाटों के मनोरंजन का अधिकार दिया जाता है। अब से नापाबी जाट और उसके परिवार वाले भवाई कहलाने लगे।"<sup>१</sup>

इस पद्धति का अनुसरण अनेक जातियों ने किया। नाच-बाने को अपने पीरव के विच्छ समझनेवाली ठसक सामन्ती प्रमाओं से युक्त थी। अतः भवाई जाति को कि इस प्रकार अनेक जातियों से तिरस्कृत हो नाचने-बाने के लिये निकलने लगे लोगों का संगठन की सामन्ती व्यवस्था से प्राकृर्त बर्च-जेव का परिचाम कही जा सकती है। निम्नवर्ग के लोगों ने भी अपने भवाई बनाए। जाट बाकड़ शंभी जीण बूनर, बीसा कुमावत आदि जातियों के भवाई राजस्थान-मामवा में पाये जाते हैं। गुजरात के (भवाई) नाटय इन भवाईयों के नृत्य-नाटकों से काफी मिलते-जुलते हैं।

भवाई नृत्य नाटकों के कुछ नाम हैं—'बीरा बोरी' (बनियों का खेल) 'सुरदास' (अन्ने और कुचरिज साधू का खेल) 'डोकरी' (जिसमें बूझा अपनी लड़की का विवाह एक बूझ से करती है—समाज की कुप्रथा पर हास्यात्मक व्यंग) 'लाड़ा-बाड़ी' (बो पलियों वाले प्रवेड़ की दुर्बसा—बहू-विवाह का कुपरिचाम) 'खंकरिया' (कासबेसिये



‘मवाई’ लोक-नृत्य

भाई ने सन् १८६१ के परचाय 'जयकुमारी-विजय' 'हरिश्चन्द्र' 'ललिता दुःख-वर्जन' आदि लिख कर बंबई के प्रभाव को कम करना चाहा। उनका यह प्रयास बौतगफा बा। एक भोर पारसी थियेट्रिकस कम्पनी के धार्मिक प्रभाव को मिटाना तथा दूसरी भोर बंबई देखनेवाले लोगों की रुचि को परिपूरित करना। इसी समय कुछ और गुजराती नाटक कम्पनियाँ स्थापित हुई। सती हीमरी मीनाबाई, नृसिंह मेहता प्रेमी कथाओं का बोध जाता बा। इन नाटकों के प्रति सौहार्दप्रियता कम न थी। इन प्रकार ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों का भी प्रवेश हुआ। एक घोर नगरों में गुजराती नाटकों का प्रवेश बिकसित हो रहा बा तो दूसरी ओर भवाङ्ग की परम्परा अपनी स्वाभाविक गति से चल रही थी। साहित्यकारों के कम-सम्पर्क से प्रसन्न होकर काम करने की वृत्ति के कारण जो कुछ रणक्षेत्र भाई का स्वप्न बा वह पूरा नहो सका।

कतिपय विशेषताओं के कारण 'भवाङ्ग' एक लोक-नृत्य का भी प्रकार माना जाता है। राजस्थान-मासबा में गुजरात की ओर से जो जन-प्रवाह बहा उसने बंबई का प्रचार दूर-दूर तक किया। भारतीय लोक-नृत्यों के उद्धारक बेबीसाह सावर ने बंबई को राजस्थान की भाँसा की उत्पत्ति बताया है। उन्होंने इस संबंध में एक कथा का उल्लेख करते हुए लिखा है "धान से ४ वर्ष पूर्व जब राजस्थान के गाँवों में भी सामाजिक और जातीय भेदभाव के संकुल उत्पन्न हुए, अँधीय के भेदभाव बढ़े पारि वारिक जीवन में किण्वलमता उत्पन्न हुई कमा बिसास और व्यवहार का साधन समझी गई, अँधी जाति के लोगों ने उसे विरस्तार के योग्य समझ अपने से दूर हो रमा ती यह भावना गाँवों में सबसे अधिक राजपूतों और जाटों में देखी गई। यह लड़कू जाति थी। नृत्य और गान को ये लोग धीरे धीरे और औरता का धनु समझते थे। लोटी करना और पशु पालना इनका मुख्य व्यवसाय बा। इन्हीं जाटों में नागाजी नाम का एक जाट बा जो केकड़ी नामक स्थान में रहता बा। इसे बचपन से ही नाचने गाने का शौक बा। यह जाट जाटों को धाँसी नहीं लमी उन्होंने उसे लकड़ा भासा भूमन और आराम देकर अपनी जाति से निवान दिया और कहा कि तू धान से ही हमारी जाति का नाक बवाई है और तुझे समस्त जाटों के मनोरंजन का अधिकार दिया जाता है। तब से नागाजी जाट और उसके परिवार वाले बंबई चलाए गये।"

इस पद्धति का अनुसरण अनेक जातियों ने किया। नाच-गाने को अपने पीरख विकट समझनेवाली ठसक सामन्ती प्रजाओं से मुक्त थी। यत बंबई जाति को कि इस प्रकार अनेक जातियों से विरस्तृत हो नाचने-गाने के लिये निकाले गये लोगों का संघठन भी सामन्ती व्यवस्था से प्राङ्गुर्भूत बर्त-भेद का परिणाम नहीं बा सफटी है। निम्नवर्ग के लोगों ने भी अपने बंबई बनाए। बाग बाकड़ बागी भीम भूवर, मोबा कुमावत आदि जातियों के बंबई राजस्थान-मासबा में पाये जाते हैं। गुजरात के (बंबई) नाट्य इन प्रजाओं के मूल-नाटकों से काफी मिलते-जुलते हैं।

भवाङ्ग नृत्य नाटकों के कुछ नाम हैं—'बोरा बोरी' (बनियों का खेल) 'सूर्याष्ट' (धन्य और कुपरिण साधु का खेल) 'बोकरा' (जिसमें बूढ़ा अपनी लड़की का विवाह एक बूढ़ से करती है—समाज की कुप्रथा पर हास्यात्मक व्यंग) 'लाड़ा-लाड़ी' (दो पलियों वाले अग्नेय की पुर्वधा—बहु-विवाह का कुपरिणाम) 'बोकरिया' (काबरेमिये



भवाई लोकनृत्य





पुस्तक का ज्ञानम धनना क्षपेरी से प्रेम का अभिनय) 'हीकाजी', 'जाशजी' 'डोतामाक' शारि । मुबरात में यद्यपि इन्हीं नाम क लेख नहीं मिलते पर सामाजिक जीवन से संबंधित कथानकों में काफी साम्य है ।

इस समस्त मृत्यु-माटछों में प्रतिमय के साथ साकमीयों का वायन भी होता है ।  
सुरंगी नकीरी नगारे, डोम और मजीरों का प्रयोग वाद्यकार करते हैं ।

मर्बाई का किसी समय पर्याप्त प्रचार था। जनसाधारण में से सौन्दर्य-रंजन के हेतु परिष्कार की सामग्री खोज माला मर्बाई-द्युबिनेताओं के भिन्न सङ्ग्रह बाढ़ रही है। शास्त्र की भुलाने के मिय प्रयुक्त वे वे वे, वे साठा, वे दाय्य मर्बाई में मृत्यु के बोध का काम करते हैं। इसी से गाईब्य जीवन से भिन्न गया परिष्कार-अकरण का ज्ञान हो जाता है।

जीतों में मर्यादा की कमी नहीं। प्रेम संबंधी एक बोधा है

‘सामिरी लाम्पड डस्तुब्या ने यत्न तर्जिया काय

‘कर पहिजेर जरे नुदड़ी तेना शयले हाथ जराय ।’

साहित्य में नवाइ को विषय महत्व नहीं मिला है। गम्भीरतापूर्वक इस पर विचार किया जाये तो ऐसी कितनी ही सामग्री नवाइ के प्रत्यक्ष मिलेगी जिसे साहित्य की दृष्टि से बीरब प्राप्त हो सकता है। नोबलमरण ने 'सरस्वतीचंद भाग १' में बुद्धिमान के कृत्य की रीतों का वर्णन करते हुए लिखा है

'जुहानी तो नार में नाकड़े घोंसी ।'

जगद्गुरु में यह संकेत इस प्रकार प्रदर्शित है —

‘ਜੁਹਾਨੀ ਦੀ ਜਾਦ ਨੇ ਜਾਨੇ ਬੀਬੀ

पियू परदेश ने बाइडी बेटी

पञ्चमती काय ने यन्त्रती है बहाका

वे नीशानीए नामर बाकि ।

इन्हीं पंक्तियों की भाँति इसी पंक्तियाँ देखिये —

‘घाबनी घायरी घाबले घाई

જામેજોવી છે જાણે સુઠારી

જાનજે માય મા જેઁ જાકા

ये नीचानीए सम्पूर्ण बाबा ।

भाटकों में मनीषा प्राणी के संस्कारों मर्यादा में लोकोन्मुखी अनेक विधेयताएँ हैं। समस्त नृत्य-नाटिका के मूल तथा मूल्यों के साथ भीतों के प्रयोग की प्रकृति का पूर्ण समन्वय है। नृत्य-प्रदर्शन में अभिनेता नृत्य करते हुए ही मोक्षों के सामने पाते हैं। क्रिश्चनार के मूल्यों का प्रचार पहले या यह मिश्रणपूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह धोष करने का विषय है। गुजरात में लक्ष्मी के मित्र मित्र बोस नृत्य के विभिन्न प्रकारों की सम्मानना व्यक्त करते हैं। मर्यादा के मुख्य अवसर ही वाद्य बंग के होते हैं। कुछ देशी हॉम के चार कुंभियाँ तथा रेखा का प्रयोग कभी-कभी होता पाया जाता है। कुछ विधिष्ठ क्षेत्र या नृत्य के 'बोस' बोस कर कहे जाते हैं। अतएव मर्यादा में संकीर्ण का प्राधान्य काव्य के साथ रहा है। मूला मूल्यों के प्रत्यक्ष में दीन-बारेण की कई कुंभियाँ मर्यादा में कही जाती हैं।

‘महुड़ी तेरी आवा में बैठे हीन ककीर  
कही सीढ़ये बाग में कही सरोवर तीर  
कही सरोवर तीर अनोपम तेरी छाया-  
बैठ हीन ककीर बी बड़ी बीन गुमाया  
कहत बीन बरबेस जुनी जुनबीबी कही  
बैठे ककीर छाम में तेरे महुड़ी ।

स्त्री पात्रों द्वारा लम्बे और विस्तारित रूप में चीत कहे जाते हैं। उनमें मूल के अन्तर्गत राम का प्रभाव होता है। ऊँची आवाज में पाने की प्रथा है। पंथों की अन्य रचना मूलों के अनुकूल ही प्रतीत होती है।

राजस्थान-मासका की और मवाई के बीचों में हास्य के साथ प्रेम के उत्कृष्ट भावों का निर्वाह पाया जाता है। बाबाजी के खेल में मारमत्ता कही है —

‘नेवारा सरवर कर्क प्रीतरी बाँधू पास ।

मारमत्ता जल की मेंछिया, बाबो नाले जाल ॥’

श्री रामनारायण पाठक ने ‘मवाई घने उक्तों’ नामक अपने लेख में इस पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालते हुए लिखा है —

“तैसा एक मूलको राम प्रवान हूँ घने पीठ नी छेवटनी पंक्तिमें प्रवत  
राम बी हुत समय मूल साथे बसाती भवो पीठों हूँ प्रयोग बी बसाबी छत्रु घने नवी ।  
छा एक वृष्टांत मापु बू जेने घम्य रचना न घेनी मूलोभितता सूचये छे । के साधना  
वेप मां शीमा नामनी गाजा आवे छे तैसांभी एक हूँ मळ छू —

‘घाछी सोलो जाम्पो रे राज मे  
घाछी सोलो रे  
नीवरी सोलो जाम्पो रे राजन नीवरी सोलो रे  
सोले बरसती मुन्दरी धोरी जल बरसाने जाम  
काँलो जाम्पो प्रेमबी छे तो ऊँची ऊँची सोला जाम  
राज मे घाछी सोलो रे

इस गुजरगती मवाई में स्तर की कभी प्रत्यक्ष छिड़ होती है जो राजस्थानी में नहीं है। कहीं-कहीं कवि के नाम की छाप लगाई जाती है। प्रायः प्रबलित रचनाओं से बिना नाम के ही कवि का ज्ञान हो जाता है। ‘रिक्ता’ में मूल के बोल जोड़ दिए जाते हैं और कभी-कभी रचयिता का नाम बाह में बोल कर बलकों को कवि के नाम से परिचित कराया जाता है।

मवाई का अध्ययन गुजरगती नाटकों के पृष्ठ में अपना वैशिष्ट्य रखता है। किसी समय समस्त गुजरगती में मवाई लोकप्रिय मनोरंजन का साधन था। यद्यपि एक और घम्य प्रकार का मनोरंजन भी गुजरगती में प्रचलित है जिस पर मधुप के पंथों का प्रभाव स्पष्ट है। वैष्णवों के प्रभाव से ही उसमें राजा-कुम्भ की लीलाएँ और भग्ना माया की पूजा का प्रचलन हुआ।

१९वीं शताब्दी के पश्चात् नवीन नाटक की रंग पर घम्य उनमें अधिकार छने नहीं। मवाई के नाम में भी निषिद्धता पहले से ही न थी। ऐसी स्थिति में यह सम्भव न हो सका कि मवाई का यथोचित विकास होकर गुजरगती प्राप्त की सादृश-परम्परा विभूषित हो।

## जात्रा (यात्रा), गम्भीरा और कीर्तनिया

बौद्ध बर्मावर्षियों ने अपने बर्म को लोकप्रिय बनाने के लिये भारतवर्ष पूर्व भिक्खुस्थ देशों में कतिपय उत्सवों का प्राथम्य दिया था। बीवी यात्री काश्मिरान ने अपने बाबा बर्मन में चौथीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल के कुछ ऐसे उत्सवों का विस्तृत वर्णन किया है। रजयात्रा का उत्सव ऐसी ही परम्परा रही है जिसका निर्वाह उन दिनों बौद्ध और पाटलिपुत्र में बड़ी श्रद्धा-भाव से किया जाता था। इसी नीति जनजातजी की रजयात्रा घबका सम्य यात्राई काफ़ान्तर में पूर्ण धाड्य-भक्त होकर प्रकटित होती गई। यही जिस बाबा का वर्णन किया जा रहा है, वह यद्यपि उक्त उत्सवों से भिन्न है परन्तु जिसका सम्बन्ध बंगाल के संगीत नृत्य और नाटक परम्परा से प्रसङ्गत सिद्ध है। यों नाटक परम्परा से सम्बद्ध 'बाबा' घबका 'बाबा' ऐसी पारिष्टिक यात्राओं से किन्हीं घंटों में जुड़ी हुई है।

बाबा (यात्रा) का घब है जुलूस या उत्सव। सबनूति कृत 'मानवी नाबब' में वह एक इनी घब में प्रयुक्त हुआ है। बंगाल जड़ीसा और मिथिला में यात्रा की परम्परा विभिन्न-भिन्न नाट्यों-मूल्यादिनों के रूप में प्रकटित है। भक्तजन अपने धारम्य की उपासना के हेतु प्रारम्भ में कीर्तन करते और नाचते-गाते किसी विधिष्ठ स्थान तक पहुँचा करते थे। यात्रा भी मथिर घबका देवस्थानों तक भक्त-मण्डलियाँ अपने उपास्य की सीमाई करती हुई गाँवों या नगरों के मार्ग से जाया करती हैं। कदाचित् यात्रा घबका 'बाबा' का यही प्रारम्भिक स्वरूप हो। श्री सुकुमार सेन ने "बंगला साहित्येर कबा" में यात्रा घब का घब वेवपूजा के निमित्त आयोजित मेला जुलूस और नाच-गीत बताया है।<sup>१</sup> पारिष्टिक युग में नाटक और बर्म का परस्पर सम्बन्ध रहा है। इन्म की सीमाओं के प्रबंधन जनपदों के अपने लोकिक नाट्यों में उवा से प्रकटित रहे हैं। यात्रा घबों में वे विपक्ष कूब बिने हैं। प्राचीन यात्राओं में नीत और संवादों के माध्यम से धर्मिक को जो समस्त प्रदान करने वाले तत्त्व प्राप्त हुए हैं वे परम्परा की सृष्टि के करने लिये वर्णित थे। विद्वानों का जो विदवाह है कि बीच में संस्कृत-नाट्यों की परम्परा जहाँ दूटी है वहाँ बंगाल की "बाबा" ऐसी अपने उत्कृष्ट स्वरूप को लोक प्रकटित बगाने रखकर बहुत्वपूर्ण कार्य किया है।<sup>२</sup> ६ पी० इण्डिया के मत से वैदिक-काल के ऋग्वेद-उत्सवों से सम्बन्धित नाटकों का स्वरूप यात्रा के अनुस्यू था। यह जो घबसत या नकला है कि वैदिक युग में यात्रा (जात्रा) का ही प्रकार था। यह कहना उपयुक्त होया कि संभवतः नाटकों का लोक प्रकटित स्वरूप उन दिनों बना रहा होना और अभी से हम यात्रा की यात्रा का सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। डा०

१ पृष्ठ १४३ पर देखिये।

२ की०, संस्कृत भाषा, पृष्ठ ४०।

कीर्ण के बिचारों में यात्रा नाटकों में स्वाभाविक नाटक की धोनी प्रकीर्ण है, किन्तु यह धोनी नहीं है जिसका हम वैदिक नाटक से सम्बन्ध जोड़ें।<sup>१</sup>

यात्रा 'कमलर' ग्रन्थों प्राप्त में मीरनाटकों की परम्पराओं का विकास हुआ। ये परम्पराएँ मूल रूप में अपने ही समान तत्वों की माहक हों। पर स्थानीय रंगी और भाषाओं से उनमें पर्याप्त भेद लक्षित होते हैं। यात्रा के अतिरिक्त बंगाल में कविदान कीर्तन पांचाली और कथकता जैसी उपर्याप्त प्रचलित रही हैं। नाटक की कोटि में यात्रा ही सर्वोपरि है और वर्तमान काल में साधारण जनता के संघ की घोषा है। जैसे पांचाली कथकता अन्य लोगों को यात्रा में सम्मिलित कर लिया जाता है।

१६वीं शताब्दी में १६वीं शताब्दी के अन्त तक बंगाल में साहित्य मूलन के प्रति रूचि कम हो गया था। लोगों के मनोरंजन तब भी कम नहीं हुए। राजनैतिक दृष्टि से मध्ययुगीन अवस्था बहुत कुछ अतिरोधपूर्ण थी। फिर भी लोगों में 'रामायण' और महाभारत के आख्यायिका कृष्ण-सीता संबंधी गीत मनमा बड़ी बामुनी और शिव के गीत उन्मुख नाच से गाये जाते थे। बंगाल में सुकों के आधिपत्य के कारण नाटकों का विकास पर्याप्त बढ़ गया था। यात्रा के रूप में पारिवारिक और पौराणिक कथानक लोक संघ के विषय तक भी बढ़े रहे। प्राचीन नाटकों पर लक्ष्मीनारायणियों का प्रभाव था। वैष्णव महाग्रन्थ का प्रभाव है सरल-अनीतमय पराधर्माचारों में कृष्ण सीता संबंधी जीवन-कथाएँ अभिनय के साथ प्रस्तुत की जाती पारम्पर्य की गई। इस तरह कृष्ण यात्रा का प्रादुर्भाव हुआ। इसके बाड़े ही पहले बंड़ीबास में कृष्ण कीर्तन की रचना की थी। मूलराज लाल ने भी 'की कृष्ण विजय' रचवा मिली थी। अंत कृष्ण की समुच्च सीताएँ मूल कवि की सम्यक्ता से प्रसूत हो बंगाल बिहार, उड़ीसा ही नहीं और भी दूर तक प्रसारित हुई। लोचननाथ (सन् १२३३-१२८६) जयसारा बल्लभ एवं बहुनाथराय जैसे कवियों ने ग्रन्थ का अनुमूलन किया। डा० लाल ने यात्रा के विषय में लिखा है कि यात्रा का अभिनय का सर्वप्रथम उल्लेख लोचननाथ शताब्दी के आरम्भ में प्राप्त होता है। उस समय वैष्णव महाग्रन्थ (१४८९-१५३३) का बंगाल पर पुनः प्रभाव था। अन्ते है वैष्णवदेव ने स्वयं अपने मौला के घर में 'रविमयी-हरण' का अभिनय किया था। यह अभिनय यात्रा की ही धोनी में था। वैष्णव रविमयी बने थे और उनके साथी गदाधर ठाकुर।<sup>२</sup> कस्तुर यात्रा के अन्तर्गत और प्रकार का संपूर्ण वेय वैष्णव महाग्रन्थ की प्राप्त है। १६वीं शताब्दी के पश्चात् कृष्ण और राधा प्रायः यात्रा के विषय बने रहे। कमदेव बंड़ीबास विद्यापति एवं अन्य कवियों की रचनाएँ यात्रा की नृमिका में प्रचलित जाने लगी। वैष्णव धर्म की एक और यात्रा के द्वारा पर्याप्त विकसित होना का अवसर मिला तो दूसरी ओर यात्रा नाटक ही कृष्ण सीता का पर्याप्त बन गया। बाई कोई भी कथानक। परास-अपरोक्षता यह कृष्ण सीता से ही संबंधित हो जाते थे। अन्ते है कि 'कामिना-रामन' सम्बोधन भी यात्रा का ही पर्याप्तवाची था। अंत बार ही अन्त तक यात्रा की यह चारा प्रभावपति से बंगाल की भूमि पर बहती रही। महापण्डित इसका प्रभाव पाये बल का प्रकट हुआ। 'हरावठार' और 'यज्ञांग' में यात्रा का रूप ही अविनाश्वर होता है। इसका कारण संभवतः इतिहास के अंत प्रबंध से





जात्रा (यात्रा) का एक मुदग-बादक



कृष्णसीता पर आधारित एक मणिपुरी लोक-नृत्य

संबंधित है जबकि बंगाल के कुछ परिवार दक्षिण कोकच में जाकर बैठे थे। कोकच में जो बौद्ध धारास्थ हैं उनका आचरण बंगाल से ही हुआ था। (बंगाल को बौद्ध प्रवेश कहते भी हैं) यद्यपि भाषा का मुख्य प्राप्ति में प्रचार का कारण परिवारों का एक स्थान से दूसरे स्थान की सार जाकर वहाँ की उच्चता और संस्कृति से अनुभूति जाना है।

उड़ीसा में 'पटुमा' जाति के लोग अपने इष्ट की शायदशा में भाषा आशोचित करते हैं। पटु का व्यवसाय से ही लोग करते हैं। यद्यपि उड़ीसा में पटुओं का यह व्यवसाय मल्ट हो चुका है तथापि मूल में वह जाति निरुपेक्ष किया करती थी। पटुमा संगीत पर लिखते हुए धीरज ने एक बृह पटुए से सुनी हुई एक कहानी का उल्लेख किया है। उसके अनुसार पटुए निरुपेक्षों की संतान हैं। दुर्भाग्यवश भाग उनकी अवगति हो गई है क्योंकि एक बार उनके किसी पूर्वज ने शिव की अनुमति के बिना उनका एक शिव बनाया था। शिव ने क्रुद्ध होकर भाग दिया। तभी से पटुए मूलमानों की जाति शायंता करते हैं और हिन्दू देवताओं के शिव बनाते हैं। इस कथा से निश्चय ही पटुमा हिन्दी जाति के छिड़ होते हैं। उड़ीसा के पटुओं में लोक कथाएँ मानेमाने नायकों का बहुत प्रभाव है। इन्हीं लोगों द्वारा बाबाएँ आशोचित की जाती हैं। भाषा में छ सात व्यक्ति होते हैं जिनमें नायक और नायक के पठिरिष्ठ उद्योगी का रूप कोई पुरुष धारण करता है। यही भाषा की मूल-भाविका होती है। पहले भाषा का कर्म व्यवस्थित हुआ करता था। उसमें बाड़े जैसे मूल और अभिन्न प्रचलित थे। ११ वीं सताब्दी के मध्य में कृष्णमन मोस्वामी के प्रवर्तों से यह परम्परा कदाचित् परिष्कृत हो सकी। डॉ० डे का कथन है कि आरम्भ में भाषा का संघीत पक्ष ही उत्तरेक्रीय था। कथोपक्रमन साधारण और नाटकीय स्तरों में द्वान्तरा अभिन्न थी। पक्ष के संवादों में वीरों का अनादर्यक पुट अक्षरय्य था यही एक कि पूरे संवाद की सीतबद्ध हुआ करते थे। यही भाषा (भाषा) बंगाल के नाटकों की पूर्वजा है।

भाषा का अभिन्नय लोग और मूल्य के साथ नायकों के सामूहिक भीत पर चलता है। तमस्त नायक 'बीरा' नामक स्वेत वस्त्र पहनकर रथ पर उतरते हैं। यह रथ खुली हुई घबल मूल पर चलता किसी यन्त्र के ढाँचे बगुने पर निर्मित होता है। पौरुषिक नाटक में नाटिका की प्रति भाषा में 'धीर-अभिधा' का नामन बड़ी प्रकार होता है किंतु उरह उत्तर भारत के लोक नाटकों में देवताओं की स्तुति और पुष्प की बन्दना। 'धीर-अभिधा' का विषय मौर्य प्रभु चैतन्य की बन्दना से सम्बन्धित होता है। इस परम्परा से यह धीर भी स्पष्ट हो जाता है कि चैतन्य ने भाषा का वास्तव में उद्धार किया था। चैतन्य के पश्चात् भाषा के ही प्रभाव से बंगालस्थानी कृत 'विदग्धमधुवा' एवं प्रेमदास कृत 'चैतन्य चन्द्रोदय कीमती' (१७१२) जैसे नाटकों की उत्पत्ति मिली। छोटे-छोटे संघीत नाटकों में कृष्ण बीरम की लक्ष्मियों एवं विविध प्रसंगों का विस्तार भाषे चल कर होता गया।

भाषा के अभिनेता 'अधिकारी' के नेतृत्व में काम करते हैं। अधिकारी ही उनका निर्देशक और प्रधान नायक होता है। जिस तरह महाभारत के पर्वों में सरदार का अस्तित्व है उसी तरह भाषा में अधिकारी का। यही एक बात ही खबर है, परमाणव



नामक निर्देशक १५वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। यही पहला नाम मिला है। परम्परा के बाद निर्देशक का कम बचपन उपमन्य है। बहुत समय तक धारा में किशोरों का अभिनय पुरुषों द्वारा ही किया जाता रहा। अब स्त्रियों का प्रवेश और नई सभ्यता के दावों का विजय गमन के घरीर में उत्पन्न मध्य एक छहरी में बाबा प्रवेशन की ऐसी विवृत हो गई। परम्परागत बाबा के स्थान पर सभ्यता और हायड्रोजनम भा गई। अतःकाल के लोकिया बहिनों ने भी एक भाषा रूप धारण किया जिसे 'सलेर माता' कहा जाता था। इसी में सब से पहले स्त्रियों मंच पर आई। इस भाषा की वैषम्य प्रभाव साधनी इसम भुक्त हो गई। गीतों में श्रुति का प्रवेश और कथानकों में परिवर्तन हो गया। अनेक छोटे-मोटे हलों में इसे आचारिक, साम्य सामकर विवेदों का विषय बनाया। बरिबान यह हुआ कि बाबा आचारिक रूप में केवल ऊँकर छहरी का 'आपेरा' बन गई। पहले गीतों के अर्थधार, रस या आचारिकीयन यथोपायन की भावना से माता सम्प्रभियों को निर्मित करते थे। आचारिक स्थिति के हृद-केर और आचारिक कठिनाइयों ने इस व्यवस्था को ठिक ठिक पहुँचाई। छहरी में एक और भाषा की अस्मात्किया हुआ गई पर गीतों में हमरी और अधिविषय कथा ने अपने अन्तर्गत रूप में इस परम्परा को जीवित रखा। बीसवीं शताब्दी ने कथोन्मेष में माता की ऐसी अस्मात्क कर मुकुन्दराज ने समाज की बुराईयों एवं निंदनी क्षात्रन के विरुद्ध रचनाएँ लिखीं। गीतों में उसके मीठ विजय की तरह फैल गये। यह भाषा की परम्परा भाव के समय में भी गीतों के मौर्यन का साम्य है। प्रतिवर्ष भाषा, मध्यमियाँ जुड़ी है। बंभाव में कथिप नाटक मध्यमियाँ इस गीतों को अपना कर सामान्य जनता तक नाटकों के अने प्रयोग प्रस्तुत करने में संलग्न है।

### गम्भीरा

१)

१

११

गम्भीरा लोक नाट्य का दूसरा रूप है जो बंगाल में प्रचलित है। यह आर्य मठावसिष्ठों का मंच है। धिब की लोभाएँ अनिनीत करने से निमित्त अन्तर्गत मूँह पर बेहरे अन्तर्गत छहरी है। यह जो प्राण सीताएँ की बाटी है। निर्देशक और अभिनेताओं को अपनी सुविधानुसार पर के पीछे चार्ज-माने व हलकों के बीच ही किन्ही भी व्यक्ति से बातचीत करने की स्वतंत्रता होती है। यही पूर्ण केवल की गीतों के सहारे साधारण रूपों का बना लिया जाता है।

गम्भीरा में भी भी-एस-एत ने किन किन अपने सुतवादी आलोचन का प्रचार धारण किया उन्हीं किन उन्हीं से प्रभावित हो बंगाल के कथिप प्राचीन मूल्य और नाट्यों की और धिबियों का आन भवा। 'हृदय' और 'मूल्य' बचपरी आलोचन के मुख्य बहस थे। अन्तर्गत गम्भीरा के गीतों की पुरानी लोक-कथाएँ सामने आने लगीं। गम्भीरा इसी तरह की मुलाई हुई सामग्री थी। यह संभवित के अन्तर्गत पर अन्तर्गत विषय में गम्भीरा की भाँति ही 'नकाब-मूल्य' होते हैं। नकाबों का निर्माण तब के बहरी और प्राचीन रीति करते हैं। अभिनेता अन्तर्गत में मान बहस तथा अन्तर्गत का अन्तर्गत रख कर धिब का स्वयं बनता है। यही संस्था ही या रोमी कर, भाषा है। उसे में बहस की भाषा और भाषे पर बहसों का लब्धा पूर्ण धिब का भेष है।

धिब रूप अभिनेता जनता को प्रभाव कर डाक की भाषा पर मूल्य धारण करता है। भाषकों का मंचन उसके पीछे पीठ पाता है। मूल्य की गति धारण में मान और अन्तर्गत में हृत हो जाती है। मुद्राओं का प्रवेशन उन्हीं कम से परिवर्तित होता है।

गम्भीर का ठीक यही ढंग है। इतिहासकारों की विवेचनाओं से का विवेकात्मक है कि प्राचीन नाटकों के अनेक उपादानों से रहित ये प्राचीन नाटकों के मूल-नाट्य अंग भाषों को धारणित करने में अधिक सक्षम हैं।

महाभारत-नाट्य का एक और रूप भी है जिस 'बुद्ध-बुद्धि' कहते हैं। यह एक प्रकार का दार्शनिक अभिनय प्रमाण नृत्य होता है। जिसमें बुद्ध-बुद्धि का रूप धारण कर का अभिनेता सम्मिश्रित नृत्य करते हैं।

कौटिल्य के मतानुसार नृत्य चरक गम्भीर उत्पन्न के रूप है जो वाणी रूप के अन्त में अभिनीत किये जाते हैं।

हैंसों ने धिक् की धारणा में जिन् 'नाट्य-रत्नों' को धरनाया के मूल-नाट्य प्रमाण होकर भी वाक्य से अधिक उत्कृष्ट नहीं हैं।

## कीर्तनिया

कीर्तन यात्रा की रीति ही एक दूसरी नाट्य सामग्री है। इनमें भी मन्त्र गन उद्गार वादकवाचक हरीलीला करते हैं।

कीर्तन नाटक की मूल प्रेरणा इनकी कीर्तन से है। जिस समय मिथिला और नेपाल में वैष्णव महाग्रन्थ की वाणी कीर्तन द्वारा कृष्ण लीला को उत्कर्ष प्रदान कर रही थी उन्होंने हिन्दू नेपाल के राजदरबारों की नाट्य-नाट्य परम्परा का साथ मिथिला की जनता में कीर्तन का प्रभुत्वान्तरण किया। नेपाल के अलग-अलग नाटकों के प्रेमी ब। उन्होंने न केवल नाटक ही लिखवाये बल्कि उनके अभिनय के लिये मर्चों का निर्माण भी करवाया। यद्यपि मंच जुने हाटे वे और अभिनय दिन में किया जाता था तो भी संघीत-काम्य-बद्ध सवालों का प्रभुत्व पीछे-पीछे कबानक और गद्य का प्रयोग उनमें कम ही होता था। नृत्य ही इन नाटकों का मुख्य आकर्षण रहा है। सन् १७६४ के पश्चात् यह परम्परा मन्त्रों के पठन के साथ लुप्त हो गई। राजाधन्य के समाप्त होने पर भी जनता में कीर्तन यात्रा के ढंग की नाट्य प्रणाली प्रचलित थी।

कीर्तन यात्रा वर्तमान नाटक है। कृष्ण या धिक् चरित इन नाटकों में अभिनीत किये जाते हैं। इसका अभिनय रात को होता है। प्रमुख अभिनेता नायक कहलाता है। पहले गायत्री पद्यों का संघीत इसमें प्रचलित रहा करता था। आज भी गायत्री संघीत मानवा तक में मिलता है जो लोक-नाट्यों की ही सामग्री है।

कीर्तन यात्रा पूर्ण रूप से महिला नाटक है। 'परबेस' (प्रबंध) नाट्य द्वारा वाक्का के नाच की रीति प्रारम्भ में समस्त पात्रों का परिचय कराया जाता है। बाक्य उद्देश्य मिथ ने इन नाटकों को तीन भागों में विभक्त किया है। प्रथम काल १३५ से १७ ई. दूसरा १७० से १८०० ई. और तीसरा १८०० से १८२० ई. तक। प्रथम काल के मुख्य नाटककारों में उमापति सर्वाधिक लोकप्रिय नाटककार हुए। दूसरे में काम्भाराम लोक कवि और गम्भीरपति के नाटक तथा तीसरे काल के विश्वनाथ बालाजी चन्दा आ आदि नाटककार उत्पत्तीय हैं।

## अधिया

यही कीर्तन यात्रा १६वीं और १७ वीं शताब्दी के बीच आसाम में 'अधिया' नाटक के रूप में प्रचलित हुआ। अधिया में पद्य के स्थान पर गद्य का विकास हुआ। मन्त्र-

विनीत के स्थान पर वैष्णव धर्म के प्रचार का उद्देश्य इसमें अधिक निहित था। धर्मियाँ नाटक केवल एक धर्म का नाटक होती हैं। यही कारण है कि उसे धर्मिया कहा जाता है। छंकरदेव और गोपालदेव लोकप्रिय धर्मिया नाटककार हो चुके हैं।

नाटकों की प्राचीन परम्परा अब भी लोगों में बची है। यह अस्मत्तवीय है कि वैष्णव धर्म के प्रचार में ब्रज के पश्चात् बंगाल मियिमा और निफ्टवर्ती क्षेत्रों में लोक-कला अधिक सहायक सिद्ध हुई हैं। विद्यापति और जयदेव के पदों में लोक संघीत की शक्ति थी। धर्म में अभिनय और नृत्य का विकास लोगों में स्वाभाविक कर दिया। याना और कीर्तनिया बहुत कुछ बिसे-बुसे ढंग के नाटक होते हैं। सुबिधा के लिये हमने इसलिये बंगाल के लोक-नाटकों में स्थान दिया है।



## महाराष्ट्र के लोक-नाट्य

तमाशा, ललित, गोंधल, बहुरूपिया, वशावतार

महाराष्ट्र में नाटक की परम्परा का आरम्भ बहुरूपिया यह कहना कठिन है। किन्तु लोक-नाटकों के घटितरूप पर इस समस्या का कोई प्रयास नहीं है। नाटकों के मात्र प्राप्त होने के प्रमाणों के बावजूद भी लोक-नाट्य जनता में अपना प्रभाव जमाये रहे। संत ज्ञानेश्वर के समय मराठी नाटकों के विकास की परम्परा तथापि पौषत समित घोर स्वोच जैसे लोक-प्रचलित मनोरंजन के साधनों से सम्बन्ध हो जाती है। 'बालेश्वरी' में (सन् १९२०) गटनजी कसबूजी, मुकुबार्' आदि के उत्प्रेरित इस बात के घोषक हैं कि महाराष्ट्र में लोक-रंजन के वृत्तिपर साधन तथा वे विद्यमान रहे हैं जिन्हें उत्कृष्ट नाटकों की प्रेरणामूर्ति मानकर मराठी लेखकों ने संस्कृत नाटक के ज्ञान से नाट्य रचनाएँ लिखने में सहायक समझा। विरचनाय पञ्चरुच बाँधकर न स्पष्ट दृष्टि में मराठी नाटकों के मूल में समित तथापि पौषत प्रभुति का महत्त्व स्वीकार किया है। वरपि उक्त आधार दक्षिणवर्ती धाग्य घोर कर्नाटक के नाटकों के प्रचिक अनुस्य है तथापि महाराष्ट्र के सम्बन्ध उनमें कुछ ऐसे तालिक परिवर्तन ही पाठे हैं जिनमें उनकी स्वर्ण सत्ता ही मज्जित होती है। इसमें सम्भू नहीं कि मराठी के उदारवेत्ता-धर्मोपक कर्नाटक एवं निकटवर्ती प्रांत के इस प्रभाव को स्वीकार करते हैं किन्तु कालांतर में जो राष्ट्रीय संघ सहज विकसित हुआ वह दृष्ट्य है।

निम्नलिखित पाँच नाट्य प्रकार मराठी रंजन के आधारभूत हैं —

- (अ) तमाशा
- (आ) ललित
- (इ) गोंधल
- (ई) बहुरूपिया
- (उ) वशावतार

### (अ) तमाशा

तमाशा महाराष्ट्र का शास्त्रियों पुराना लोकनाट्य है। मात्र भी छात्रों में मैने-डेने प्रवृत्ता छात्रों के प्रवृत्त पर तमाशा आकर्षण का प्रभाव विरय है। यह लोक-रंजन का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है।

तमाशा करन बाजी मंडली 'छड़' कहलाती है। छड़ का मुखिया जो विरमक एवं प्रभावक दोनों ही होता है महाराष्ट्र में सरदार कहलाता है। सरदार 'बड़िया' (छड़ प्रवृत्ता जंग बजाने वाला) बोलिया 'गोंधिया' (स्वांग करने वाला—विदूषक)

१. आदिप्रिया में आई। प्रारंभ में सुनवरती (सं. २-३०) की आर्द्धकल्पिया की गती। सुनवरती (सं. १२-१६३)।

बाह्य हो सकती है। 'तमाशा' के पहले महाकाव्य में लोकनाट्य का स्वरूप क्या था, यह भी प्रश्न सामने है। मध्य रंगमंच संरक्षकों के अनुसार यह परम्परा 'मोहम' नामक वर्णप्रणीत नाट्य से विकसित हुई प्रतीत होती है। 'साहिर' कवियों ने इसे पुष्ट किया है। यदि इसे कन्नड़ नाट्य का विकृत रूप भी स्वीकार किया जाय, तो इसमें लम्बे नहीं कि महाकाव्य ने इस पर अपना ऐसा महार रंग बड़ाया है कि इसे एक स्वतंत्र लोकनाट्य ही कहा जा सकता है।

अन्ततः यह स्पष्ट है कि 'तमाशा' की परम्परा १६ वीं शताब्दी के पूर्व से प्रचलित है। मुसलमानों के आगमन के पूर्व महाकाव्य में अपनी प्राचीन नाट्य परम्पराएँ रही हैं। इसी परम्पराओं पर आने कम कर बाह्य प्रभाव लक्षित हुए, किन्तु वे लकी प्रभाव महाकाव्य की जातीय परम्पराओं में इस तरह पुनर्-मिल गये कि उन्हें प्रलय नहीं कहा जा सकता।

### उत्कर्ष

देसवासों के काल (१८ वीं शताब्दी) में 'तमाशा' अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँच चुका था। प्रधानतः लवाई मावजराज और बाजीराव (शिरीष) के समय इसे बृहत् प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। मराठों के राज्य ज्यों-ज्यों बृद्ध होते गये ऐश्वर्य और विमर-विता के कारण मनोरंजन के विभिन्न साधनों को प्रश्रय मिलता गया। मराठों की सेनाओं के साथ नायिकाओं के हम आवा कटते थे। एक और उत्साह की ठेकी भी और हुररी और ऐहिक शृंगार की सामग्री। नावनी और स्वास ध्वनों में तमाशा बिजला गया। उत्तर भारत में मराठों का ज्यों-ज्यों संघर्ष बृद्ध हुआ 'तमाशा' अपने स्वयं में अधिक प्रसिद्ध होता गया। रामबोही धर्मरक्षारी हीनाबी बानाबी सनतपक्ष प्रकाशक, बरपुराम बाबि नावनीकार साहिर कवियों की शृंगारी रचनाओं से तमाशा पुष्ट हुआ और धनीर-नारीय लकी का प्रिय मनोरंजन हो गया। ये लकी कवि १८वीं और १९वीं शताब्दी के वध्य हुए। प्रायः प्रत्येक साहिर कवि के पीछे स्वतंत्र 'कड' (बल) हुआ करता था। लकी कड अपने-अपने साहिर की रच-नाएँ गते थे। नावनी कड की प्रसिद्धि का कारण लकी की परम्परा का होना है। ये 'कड' नियंत्रण पर तमाशा का आसीजन करते और सर्वसाधारण के साथ-साथ धर्मियों और श्रीमालों का मनोरंजन करते थे। १९वीं शताब्दी के पूर्व मराठों का बृहत् उत्कर्ष हुआ। सामाजिक जीवन के शृंगारपरक एवं हृष्यस्पर्शी प्रत्येक नावनिमें के विषय बन। मुहिय पर आने वाले लैमिकों की विभाओं के मुग्ध विद्यावत्ता में अपने पिता के घर लड़कने और पुनर्मिलन की प्रतीक्षा में अपने हृदय को सम्भाले रखने के बिना तमाशा में प्रमुक्त होनेवाली नावनिमें में बसते। सामान्य जीवन की सरल व्यवस्थाएँ तमाशा के साहित्य में लोक-साहित्य की प्रकृति और नेकट्य की ऊष्मा से आसित हुईं।

बताया जाता है कि नावनी की उत्पत्ति केवल तमाशा के भिये हुई। लकी शब्दों ने लिखा है—'मराठी का साहिर धम्म मूलतः भयली के बाबर' जिसका धर्म कवि है, लकी मराठी पहनावा पहना कर उपलब्ध किया गया है। लकी प्रकार साहिर की





की 'सावनी' मछली कल्पनाओं संस्कृत की उपमाओं एवं मधुरमृत के संयोग से सुजित हुई है।<sup>१</sup> लोक-कवियों की यह परम्परा ऐहिक मृगार में डूबी हुई थी। सावनी के साथ 'पचाड़ा' शब्द का प्रचार हुआ। दोनों चीजों की विषय-वस्तु ठीक एक-दूसरे के विपरीत है तथापि तमाशा में सावनी ही अधिक स्थान पाती रही। प्रभावकर की एक सावनी में नारी का मृगारपरक रूप देखिये—'जाँव लबन बैनी विजुन बिनेनी बरबेनी प्रचतरसी। बूझ्यावा पावी शोक त्यामये ठेनी कोँक नोक शोक भर पुरली। मुकुमार नार, फारपुखे धनार, दास बुलासा पाँधरसी। राखड़ी केठक कुहरी गौर मनघीघार नही केनइयावी बड़न शहरी मूँद चम्नकारे गहरी देनी चम्न दुर्ब बहारी छाटी जान कमल साहरी। धक्कन बरीनिरी तनु तमुवर बिरी खरी बुपी परी मटली। छाडी धनीन करि कोकिल किचबिल पाकसवी बिल तुटली।'<sup>२</sup>

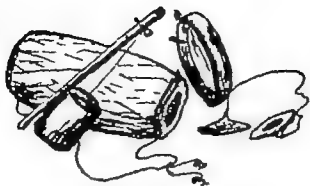
ऐसी सावनियाँ अपनी पूरी सचाई के साथ उन भावों को लिये हुए हैं जो मानव की बृहद् प्रवृत्तियों को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखते हैं। 'घाहिरी' साहित्य में ऐसी अनेक सावनियाँ तमाशा की बेबोझ सम्पत्ति हैं। सामान्य जीवन के विषय लोगों के मनोमात्रों को गहराई से झूठे हुए इनमें छिपे हैं। लोक-जीवन के परम्परागत विस्वात प्रलय बेष्टार्ड नारी के मृगारपरक बिच भावकों की सहजबल्य मस्ती और उत्कामीन समाज की खूबी तमाशा नाट्य की प्रबलित रचनाओं में उप मन्त्र हैं। धार्मिक बन कर महापण्डु के बर-बर में मरवाने घाहिरी की सावनाइयाँ नूतने लकीं और नाचक बुनों के माध्यम से तमाशाकारों ने उनमें ऐसा प्रभाव पैदा कर दिया जो मात्र एक सजीव भाषित होता है।

इन दिनों तमाशा में केवल महापण्डु के पाँवों की वस्तु है, बल्कि तमरों के विपटनों तक में धार्मिक मंत्र की सुविधाओं को पाकर सर्वसाधारण का हृदयहारी मनोरंजन बन गया है। बाजीघन पेसवा के कारण उत्तर-भारत में भी महापण्डु के सावनीकारों के स्वर नूँचे। प्रभावकर और पढ़ते बाबूराव ने दो हिन्दी में भी कुछ सावनियाँ रचीं। हिन्दी में प्रबलित सावनी शब्द के पुष्ठ में महापण्डु के इन घाहिरी का बड़ा हाथ है। १९वीं शताब्दी के शारम्भ में तमाशा की सावनियाँ धवि मृगारिक ही बनीं। उनमें मस्तीलया का पुट सा गया। परिधामत मध्य वर्षों में तमाज का एक बड़ा नाम उसके प्रति अपनी दिलचस्पी को बँटा। जैसे निम्न श्रेणी का मनोरंजन समझा जाने लगा। लक्ष्मणसुन्दर जैसे उपमावन्तक समसमे लगे।<sup>३</sup> बसपि शब्दों के काल में तिलक एवं महारना फुले जैसे व्यक्तियों ने लोक-नाट्य के इस प्रकार को सामाजिक एवं राजनैतिक-प्रचार का साधन बनाया था। ४२ के आन्दोलन में भी सका उपयोग हुआ। राष्ट्रसेवाएन तथा साम्यवाधियों के सांस्कृतिक

१ मरघी साहित्य प्रामाणिकता, पृ० २०।

२ सावनी लखनऊ में लिखी गयी थी। स्वामिनी प्रिया धक्कनरित हुई। बालों का रोजामाली जुड़ा बिजने कीकरीक लगा हुआ है। पुनर्त लुका का रहा है। मुने धनार की, मुकुमार नार दास बुलासा भारन लिये है। राखड़ी मूँदरी तथा चम्न दुर्ब की बहार उस बर घोका दे रहे हैं। अपनी लाड़ी को ऊँचा उठाये बिजने स्वाभ-स्वाभ बर बड़े लये हैं। धक्कन परी की कल्लि यह लकी हुई है। ऐसी मुग्ध होकर भी यह कोकिला की तरह गूँजन करती है। यह पाणों धाकात के डूबी हुई बिजनी है।





‘समासा’ के बाण



‘समासा’ पूरा होने पर भामदनी का बेटबारा

की 'सावनी' मराठी कल्पनाओं संस्कृत की उपमाओं एवं मधुरवृत्त के संयोग से सुश्रुत हुई है।<sup>१</sup> लोक-कवियों की यह परम्परा ऐहिक शृंगार में डूबी हुई थी। सावनी के साथ 'पचाड़ा' शब्द का प्रचार हुआ। दोनों शब्दों की विषय-वस्तु ठीक एक-दूसरे के विपरीत है तथापि समाधा में सावनी ही अधिक स्थान पाती रही। प्रभाकर की एक सावनी में मारी का शृंगारपरक रूप देखिये—'सांव लखक बेनी विगुम बिबेनी बरबेनी प्रबतरनी। बृषभ्याचा घापी झोंक स्वाम्यी डेवी कोंक मोक खोंक भर पुरली। मुकुमार मार, पायबुने बनार, घाल हुआला पोहरली। राखड़ी केतक झुहरी और मखीया नही केवल्याची बहण सहीरी मुँह पत्रकारे पडरी बेनी पत्र दुई बहारी घाटी जाल केवल माहरी। धनमुन घरी मिरी ठमु ठमुवर बिरी बरी खुदी पदी मटली। घरी प्रडीन करि कोकिल किबकिब प्राकलनी बिब मुटली।'<sup>२</sup>

ऐसी सावनियाँ अपनी पूरी खर्चाई के साथ उन मार्गों की लिये हुए हैं जो मानव की मूल प्रवृत्तियों को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखते हैं। 'साहिरी' साहित्य में ऐसी अनेक सावनियाँ समाधा की बेबीड़ सम्पत्ति हैं। सामान्य जीवन के विषय लोगों के मनोभावों को गहराई से छूने हुए इनमें बिने हैं। लोक-जीवन के परम्परागत विवराट अलब केप्टार्ण मारी के शृंगारपरक बिब नायकों की सहजबल्य बस्ती और उत्काशीन समान की खूबी समाधा नाट्य की प्रवर्तित रचनाओं में उप-सम्प है। जाने कब कर महापट्ट के बर-बर में गठबाने साहिरी की सावनाइयाँ पूजने लगीं और मावक पुनों के साम्प्य से समाधाकारों ने अपने ऐसा प्रयास रीक कर दिया जो आज तक लीन बाधित होता है।

इन दिनों समाधा न केवल महापट्ट के मार्गों की वस्तु है, बल्कि नपरी के विवटते तक में मायुमिक मंत्र की सुविधाओं की पा कर सर्वसाधारण का हृदयगहरी मनोद्वेग बन गया है। बाजीघन पैठका के कारण उत्तर-जगत में भी महापट्ट के सावनीकारों के स्वर गूँजे। प्रभाकर और पट्ट बाबूघन ने जो हिन्दी में भी कुछ सावनियाँ रचीं। हिन्दी में प्रवर्तित सावनी ध्वनि के पृष्ठ में महापट्ट के इन साहिरी का बड़ा हाथ है। १९वीं शताब्दी के भारत में समाधा की सावनियाँ अति शृंगारिक हो गयीं। उनमें मस्तीमत्ता का पुन पा गया। परिचायक मध्य बर्तीय सनातन का एक बड़ा जाल उसके प्रति अपनी बिलचलती खी बैठा। उड़े निम्न-ध्वेकी का मनोद्वेग लयला जाने लगा। सङ्गुहस्थ उसे प्रपञ्चमननक लपटने लगे। १२ यद्यपि धर्मियों के काल में शिक एवं महापट्टा पुने जैसे व्यक्तियों ने लोक-नाट्य क इस प्रकार को सामाजिक एवं राजन शिक प्रकार का सावन बनाया था। ४२ के शास्त्रोक्त में भी सखा जखीर हुआ। राष्ट्रसेवाकल तथा साम्पबाधियों क साहित्यिक

१ मरजी साहित्य समालोचना, पृ० २०।

२ लखी लखवार बिबेनी नूँच हूँ स्वामिनी प्रिया सखतरित हुई। बालों का सोमाशाली बूझा जिसने लीकलौक लगा हुआ है, दुर्लभ- झुका का रहा है। गूँचे बनार ली मुकुमार मार घाल हुआला बारण लिये है। राखड़ी, मुँहरी तथा पत्र दुई की बहार उस पर लीला दे रहे हैं। अपनी लाड़ी की झंझा उड़ाये जिसने स्वान-नान भर लड़े लये हैं। यकार्थः परी की भाँति वह मारी हुई है। ऐसी सुन्दर होकर भी वह कोकिल की तरह लज्जन करती है। वह लम्बों प्राकाश से डूबी हुई बिबली है।

संघर्षों से समाधियों के द्वारा जन-जीवन के विचारों में परिवर्तन करने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया। समाधा पर धर्मोपस्था का आरोप जब बीरे-बीरे कम होने लगा है। कुछ कास पहले 'महापद्म समाधा परिवर्ष' की स्थापना हुई है। उसमें समाधा को परिष्कृत करने के लिये विचार किया गया। निरुपम ॥ मछली का यह सौन्दर्य-भाष्य पुनः अपना महत्त्व पा रहा है।

## (आ) समित

समित मध्ययुगीन सामिक मंच है। समित की उत्पत्ति के विषय में की रचनायें संभवते मिलते हैं कि १२वीं शताब्दी के शरद में बम्बई मिनाली बाजारों नामक मराठे में समित का अभिनय करना प्रारम्भ किया। बाजारों ने पुनः के प्रयास नाचकी सम्मत्ता बड़ीया के बावोरी बुवा और बम्बई के पाटनी बुवा को अपने-अपने समितवत्त संवर्धित करने की प्रेरणा दी। इतना ही नहीं दोनों व्यक्ति बाजारों के पास बहुत दिनों रहे और उन्होंने समित का संवर्धित अभिनय सीखा है। इससे बात होता है कि समित बहुत पूर्व की वस्तु है। संत तुकाराम के एक श्रवण में समित का उल्लेख इस प्रकार आया है—

‘समित जाली काया।

होति समित पंडिरामा ॥’

राष्ट्रीय कोष (मछली) में समित का अर्थ—‘नवरात्रि सम्मन्धी कीर्तन विधिपट के उत्साह स्वाधे अंतिम दिवसी रात्रि उत्साह देवता सिंहासनाकङ्क जाली अर्थ कलून वानुस्य बंडीगाल। ईश्वर भक्तोंकी छोटे आधून स्वाधेजाली स्व० सम्प्रदा वानुस्य देवापात्री प्रसार मानावा आधि ती सर्व समासवाच्य बाढावा असा जी हरि बाढजन कीर्तन-विधिपट समारंभ करितात ते’—दिना हुआ है। तात्पर्य यह है कि समित नवरात्रि सम्मन्धी विधिपट कीर्तन है जिसमें अंतिम दिवस उत्साह देवता सिंहासन विराजे यह कल्पना कर, ईश्वर भक्तों आदि के स्वाधे आदि लिये जाती हैं तथा देवता से प्रसार प्राप्त करने का अभिनय कर उही प्रसार की वर्षकों में विरचित किया जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि समित में कीर्तन की भाषा कमरा घटती गई और काकास्वर में स्वाधे सम्मन्धी विशेषताएँ ही नाटकीय रूप में प्रकाशित हो गईं। इस प्रकार कीर्तन का सम्मन्ध समित से छूट गया और लोग अधिवाधिनय को ही मनो-पन का स्वतन्त्र विषय समझने लगे।

मछली के विज्ञानों का स्पष्ट मत है कि समित ने वीर्यभक्त एवं ऐतिहासिक

१ सबसे रंगनायक संभवते ने एक सोलापुर मिनाली नामा नामक ‘नाम्मा’ (मुम्ब पात्र) की एक कहानी अपनी पुस्तक में उद्धृत की है। नामा बड़े बाप का पुत्र था। तमामाकारों की सोहबत में बहुतकर यह मर्तक हो गया। एक बार जबके मिना ने तमामा देखा। नामा (नाम्मा) को कला पर मोहित होकर उन्होंने एक रात उसे भेंट की। यह यह जान भी न लगे कि अपने पुत्र की हूँ। उन्होंने पुरस्कार दिया है। घर पर आकर देखा तो बड़ी शाल छोड़कर अपना पुत्र ही रहा है। वास्तविक स्थिति ज्ञात होने पर उन्होंने विषयान कर लिया।

२ देखिये महापद्म नाट्य-कला व नाट्य बाधमय, पृष्ठ ४-६।

नाटकों को जन्म दिया क्योंकि अपने उत्तर मध्यकालीन युग में संक्षिप्त ही ऐसा प्रदर्शन या जिसमें पौराणिक एवं लोक प्रचलित प्रथा ऐतिहासिक तथ्योंमुखी कथाएँ नाटक का आधार बन सकीं। संक्षिप्त के नाटकों का प्रभाव संक्षिप्त पर बताया जाता है, क्योंकि मकरादि के पश्चात् जो लोक-नाट्य संक्षिप्त में किये जाते हैं वे प्रायः इसी प्रकार के होते हैं। नाट्य और मनपरी का प्रवेश अनिवार्य है। हास्यभावों के परिचित संक्षिप्तों का सामान्य कथानक को धाने बढ़ाता है। संक्षिप्त में पद्य का बाहुल्य होता है, पद्य वचन का प्रयोग भी कम नहीं होता। बासकरायण लक्ष्मण पाठक की 'संक्षिप्त संघर्ष' नामक एक पुस्तक उपलब्ध है। उसमें संक्षिप्त स्वरूपों के अनेक उद्धरण दिये गये हैं। श्री विनयमोहन शर्मा से उन उद्धरणों को पढ़ कर इस बात पर आश्चर्य प्रवृत्त किया है कि महाकाव्य में हिन्दी नाटकों के विकास के पूर्व ही हिन्दी नव का बहुत प्रभाव इन संक्षिप्तों पर पड़ चुका था। उद्धरणों से सिद्ध होता है कि चौ-तीन घण्टा की पूर्व बलिषी हिन्दी भाषा ने उत्तर की ऐसी पर्याप्त नाटक सम्बन्धी विशेषताएँ ग्रहण कर ली थीं। 'महाकाव्य नाटकका व नाटक बाह्यमय' ग्रन्थ से संक्षिप्त के कुछ संक्षेप प्रस्तुत हैं —

### छड़ीदार का प्रवेश

"निर्बुद्ध निराकार बिनका सब लुप्टीकू माचार, बिनके नीति से बेर बने चार, उठ साहेब कू मुखर कहे नगर रख्यो मेहरबान साबुसठ सुबान मेरे बड़ाव पर रख्यो प्यास, कहे बंदा राजगी बखान सब साबु सज्जन कू मुखर कहे ऐसे महाकाव्य निर्बुद्ध-निराकार, उठे निजे दसबखतार, किया दुष्टन वा संहार, जो बीमोहार महाकाव्य है मेहरबान समान"

पाटील—आप कीन हैं ?

छड़ीदार—हम छड़ीदार, बीमोह बेहता बड़ीबखतार, बीट रोसासे बांकी कमर, बने में डामा भाव मोहन का हार, खालप्यास की बांकी दसबखतार, नूतनमा वे ही बरछी कमर में हातमो खना बड़ी बड़ी पुनचार, जवा रहुं साहेब के हार भगवान के नाम की दुकाके मनकार, वे ही हम छड़ीदार कहलति है।

पाटील—तुमने कहीं नीकरी बजाई ?

छड़ीदार—बघ प्रवतार में।

पाटील—कोन से बघ प्रवतार में ?

छड़ीदार—मच्छ, कच्छ, बराह दरवारि महाकाव्य के बघ प्रवतार में नीकरी बजाई।

पाटील—मच्छ प्रवतार में कौसी नीकरी बजाई ?

छड़ीदार—नैदा हुमा सागर के रंजाबूर नाम कहलति उठे उसने बून मचाई बेवताभी से बेर छीम लिए बड़ा से सागर में छुप रह्यो सागर में छुपाने बर चार, सब सब बुर बड़ा मिला किया बिचार, मये लौरसागर साहेब के हार, बताया हान रंजाबूर का सब प्रवतार में मिया मच्छ प्रवतार, रंजाबूर मार बेर छीम लिए चार खर्चन की त्यागना करके मच्छ प्रवतार लामा किया। वही की नीकरी छोड़ बने सावे।

(इसके पश्चात् बघ प्रवतार का बघन और छड़ीदार, बीमोहदार आदि के स्तंभ) छड़ीदार के पश्चात् मालेशार आकर इस प्रकार प्रवेश करता है —

सर्ज सुनियो महाराज धार गरीब गवाज मानक सबके शिराज नाम रखी बात की। गायी ८४ का केर देव धापा जम से धेर, उंबर नहीं सज डेर, नजर रखी मेहर की। जबदा मुबन नात ठाम स्वर्ग मृत्यु धीर पाताम बैसे बड़े-बड़े भूपात सब पर सड़प काम की। बार लोक बार धाम छ वधेन बात नाम कोई पाया नहीं राम कीरत सुनियो धाप की। धापन मुगुन धोंवार हम ती धूम्य का बिस्तार, मर बीम का दग्धार बिचार गोमा नात की। लुप ही बड़े सरवार दे दिया मन में हार, छिर पर पटका करीबरतार पैरथ कुतुबीसाल ही कमर को छान माता दिया म्यान का सब बियो धिगवार समता लोहा कटिमार, लड़े लज के बालमार, नौकरी बी पाब की यादव बरते हैं लताम सबभित संतों की तयाम मेहर रखी मुबोधान धरज सुनियो बात की।

(इस तरह 'सन्निध' नाट्य का विस्तार होता है। विदूषक बीच-बीच में धाकर हास्य की मृष्टि करता है। पाटीम और धम्म धावों के बीच उन्मत्त संवाद होते हैं।) हरिवात इस प्रकार धपना स्थाप करता है—

‘जबजल नाटयल नाटयल नाटयल जब जल नाटयल। स्तोक।

अटारध पुणजानि कबीना इयम्। परोपकाय्य पुष्पाय पापाय परीकृतम् ॥

धा हा। महाराज भ्या कालाध्या ठायी कनी धप्रवध धान—स्वर्ग बिज्जुनै पोडुनात धवठार धारण कैसा—‘तो ह्य नवाधिया बरी उंबर बडला टेका बरी’ इत्यादि।

## (इ) गोंधळ

गोंधळ की प्रथा बर्तन मूलक है। नामदेव के पूर्व से ही यह प्रथा चली आ रही है। क्योंकि नामदेव द्वारा रचित एक स्वतंत्र धर्मग 'गोंधळ' के नाम से प्राप्त है। गोंधळ प्रथा महाराष्ट्र में अनुष्ठानिक यहूत रचती है। इस अनुष्ठान को धर्माधिक सम्पन्न करनेवाले लोगों की जाति ही गोंधळी नाम से विख्यात है। प्रारंभ में कहा गया है कि उमासा के धर्ममंत 'पमाड़े' भी बड़े जाते हैं। यही पमाड़े गोंधळ के धर्ममंत बैबी-देवताओं की स्तुति एवं वधोत्सव के रूप में प्रचलित रहे हैं। गोंधळी पहले पाँच बैबी-देवताओं की स्तुति करता है उत्पत्त्यात् बिन्धी कया-धर्म की आरम्भ कर किसी धर्म का बखान करता है।

उम्मार की दृष्टि से गोंधळ का तात्पर्य यह कहना धर्मवस्था से है। अन्ना गोंधळ की विधिष्ट बैबी है। गोंधळी गीत जाते समय अन्ना के समक्ष नृत्य करता है। इस धर्मोत्सवा के साथ भक्त और स्वाम जी जोड़े जाते हैं। कदाचित् इसीसिने नाट्य के सिने-जुने रूप को देखकर यह धर्म प्रधान अनुष्ठानिक अनौपचारिक गोंधळ कहा जाने लगा हो।

दिवाहादि अवसरों पर गोंधळ की व्यवस्था की जाती है। मंडप के नीचे 'जान' नामक बोली का बत्त बिछाकर, धात्रपणों और कपड़ा संहित अन्ना की पस्था पना करने के पश्चात् गोंधळी गोंधळ आरम्भ करता है। पमाड़े धात्रि धम्म बावों के साथ पूरे उत्साहपूर्वक बड़े जाते हैं। इस प्रकार संकीर्ण एवं धर्म के बहने नाट्य तर्कों की समीप्यगता होती है।

गोंधळ के स्थाय मनोरंजक होते हैं। पाटिल बुवा और गोंधळी की आरम्भिक वादवीत के पदवाच इस प्रकार गोंधळ का आरंभ होता है—

मुझिण मुझैठ तुसा माझिला गोंधळ हो ।

पंचप्रान विषय्य बीन्ही नेत्राचे हितान हो ॥ पु ॥

घटस्थापना कीती तडुरपुर महाशरी हो । चाकासी मंडप विजंता ते तेजी ठाका-  
बरी हो । बैससी बेवठा पुठे बैष्णवाचे पाणे हो । उरीकार पर्यंती गसा कुट्टीचे  
मुपक हो ॥

घसे गोंधळ कुठे-कुठे पडले होते ? तुमजापुरी कोंडनपुरी वर कसा कोणची नाचू  
यवमान ? काव्या चाफ्याची ? कां प्राग्न पातोड्याची ? कां बायराणीची ?

पाटील—आपापणीची

गोंधळी—ठीक धाई गमो यक्षपत्री गमो थोठावा गमो माझ्याहरिबामु वापयणा हो ।

हा हा हा कसा एका घाटा समूक कसाव्या पांक्का राजा राजा जी जी राजा बिसवाम्यामाजी  
बेला जीजी त्याराचार्ये काव बा नांव नांव जी जी ते कोव्या बेटपाता ठाई ठाई जीजी एक  
छातरा रानी रानी जी जी तिचे नांव कवाराणी रानी जीजी कवाराणी में छिपगार केला जी जी  
नेससी बरी भरितारी पाटोलाजी संवी मवनाची कांचोली जी जी पाची विषम्याचा मुपकार  
कारकी आपतापतिघोवाळितेवकी मौरपांक्का मौरका ठामकाजा जेझुीध्या लंकाकादलका जा ?

इस प्रकार के प्रसंग प्राय गोंधळ आरम्भ करने के पहले प्रस्तुत किये जाते हैं। पुनः  
की मकल कछे समय कमी-कमी हास्य की मृष्टि होने की पूर्व सम्भावना होती है।  
पूजा—“धब धी अठई साहेब बापिक समारंभस्य इन्निश एतकव धवतास्य घट घके १०२  
नातपट साहेब नाम संकष्टरे—माहि । कमी-कमी तत्कालीन व्यक्तियों के प्रति सामाजिक  
कारणों की प्रतिबन्धिता होती है। कथा की सूचकता कथित जैसे लोक-मध्य से सम्भव नहीं।  
यहां की बटना और वहाँ की बटना वहाँ प्रस्तुत करना कठिन नहीं है।

## (ई) बहुरूपिया

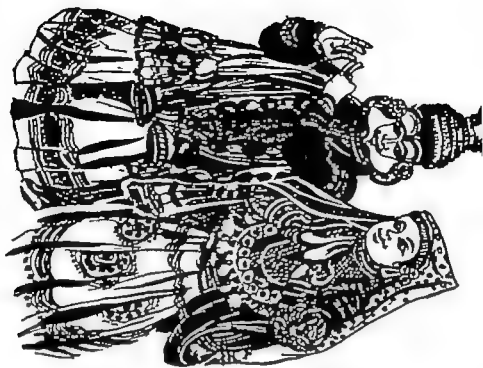
मुपलों के दरबार में बहुरूपिया न बहूत स्थापत होता था। बहुरूपिया जैसा कि  
उप्य से ही ज्ञात होता है वह व्यक्ति होता है जो निम-निम रूप धारण कर सके। स्थाय  
और बहुरूपिया में इतना ही अंतर है कि स्थाय में एक सार्वत्रिक व्यक्ति होते हैं जब  
कि बहुरूपिया स्थाय रूप स निम-निम रूप धारण करता है। मध्य-काल में बहुरूपिया  
एक बंधा हो गया था। रूप बनाने की प्रथा माण्डवी संतति में अन्य नाट्यों की भाँति  
नवीन बन्य नहीं है। बरकतउल्लाहाप १७ की छठाब्दी में लिखित 'मिम-मनाब' में रूप  
नरने का उल्लेख प्राया है। वैदिक काल में भी यह प्रथा विद्यमान थी। कठोपनिषद् के 'सर्व  
रूपं प्रतिक्रियो बभूव' से यह प्रमाणित होता है। यह प्रथा न केवल महापट्ट का विषय है  
बल्कि उत्तर-भारत में भी उत्तर-भक्ति के हेतु रूप धारण करने लगे गायों या भगों में  
भी पाये हैं। चूंकि मुगलों की सेवा-दली बराठों के दरबारों में भी इन कला को प्रयोजित  
प्रोत्साहन मिला है अतः नराठी नाटकों के पार में इनका प्रभाव भी स्वीकार करना हीमा।  
बहुरूपिया के संबंध में अनेक लोक कथाएँ प्रचलित हैं। दरबार क दरबार में कई बार बहु  
रूपियों ने कौशल किया। वेदपाशों ने भी इन कला को बहुत प्रोत्साहन प्रदान किया।  
वस्तुतः नराठी नाटक के विकास के पूर्व इसका भी अपना योग प्रत्यक्ष है।

## यक्षगान, विथिनाटकम् और तोलबोम्मुलु

यक्षगान बलिन भारतीय लोक नाट्य का वह प्रकार है जो तामिल तेलुगु ब्रम्ह भाषा-भाषी क्षेत्र की प्राचीन जनता में प्रचलित है। तेलुगु में इसे 'विथि' या 'विथि भागवतम्' भी कहते हैं परन्तु दोनों में अन्तर भेद अवश्य है। यक्षगान नाटक की परम्परा प्राग्भ कर्नाटक और तामिल संस्कृति की बाहुक है। इसकी प्राचीनता निम्नलिखित विविधता है जो भी निश्चित रूप से इसकी उत्पत्ति के विषय में सर्वसम्मत नहीं है। यक्षगान नाटक के लिये 'प्राकृत नाटक' शब्द का प्रयोग उपयुक्त है। प्रतीत होता है कि यह अवश्य ही ऐसा नाटक रहा है जिसमें संस्कृत की कुछ परम्परा का निर्वाह बड़ी हीला या धीरे-धीरे लोगों के अधिक भिन्न था। वेदुर प्रकार का लोको ने यक्षगान की उत्पत्ति 'कुरुम्बु' नामक नृत्य से मानी है। प्राचीन काल में प्राचीन नाटकों को भी 'कुरुम्बु' कहा जाता था। कुरुम्बु 'कुरु' और 'बम्' से मिलकर बना है। 'कुरु' का तात्पर्य जाति विशेष और 'बम्' का नृत्य है। अर्थात् कुरु जाति का नृत्य। एक दूसरे विज्ञान भी नेलदूरी बेंकट रत्नम्बा 'कुरुम्बी' को तामिल शब्द बताते हुए कहते हैं 'कुरुम्बी' एक जाति की स्त्री है। तेलुगु में इसे 'एस्क' कहते हैं। प्राचीन काल में तामिल यक्षगानों में कुरुम्बी स्त्री पात्र का प्रवेश होता था। कुरुम्बी पात्र का बिना यक्षगान में प्रवेश किया जाता वह कुरुम्बी कहा जाता है। केवल कुरु बंजियों से यक्षगानों की उत्पत्ति नहीं हुई। यक्षगानों के विकास पर प्रकाश डालते हुए वेदुर वास्तवी का कथन यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है। लिखा है —

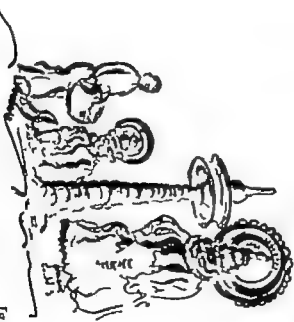
'प्राग् देश के श्रीशैल इन्द्रकील नगर (विजयवाड़ा) धारि शैल क्षेत्रों में मुनिह क्षेत्रादि वेदादि पर्वतों पर वर्षास्त्र के समय भारिक दृष्टा होते थे। उनके विनीतार्थ प्राविवाही नृत्य विशेष का प्रवेश करते परोपार्जन करते थे। 'कोरुम्बी' जाति से किया गया नृत्य 'कोरुम्बु' कहा जाता था। 'कोरुम्बु' नृत्य विशेष से कथन जाति विशेष में बदलता रहा। ये नृत्य विशेष रूप में ही न रहकर प्रबन्धों के रूप में परिवर्तित हुए और कालानुसार पर्वत प्रदेशों की महत्वपूर्ण कथाओं से विषय-विषय भीता कथाओं में सम्मिलित होकर विविध वेद-नाट्य बन गये। ये वेद-नाट्य पहले नृत्य विशेषों पर निर्भर थे। और-और इनका प्रकार नगरों में भी होता रहा है जिससे आपरिक्तों की भी एक विविध रूप इनके प्रति होती गई। इन नृत्य रूपों को घट या कलापान खोजते थे। नृत्य मुत्ताविमय के साथ ही साथ नेपों में अन्त का अन्तर भी जोड़ दिया गया। राजा समाधों में वेकोत्तव कातर (घाता) के समय यक्ष गंधर्वादि वेद कारण कर वेसाधों द्वारा प्रशंसित कथते तथा नृत्य बर्ग से वेद बर्ग की अधिकता होने से यक्षगान कहलाते थे'।<sup>१</sup>

१ देखिये वेदुर लिखित, मुनीय विजय की भूमिका तथा कर्न राजसेव विरिण्ड का लेख—'प्राग् देश के यक्षगान' (सम्प्रेतन पत्रिका, बीज, २०१०)।



‘सुखमय’ का प्रतीक

[१००२]







'कथाकली' का एक पात्र रूप-संज्ञा करते हुए ।



'कथाकली' का नृत्य रूप



कल्पुतियों के सत्तों से भी इनकी उत्पत्ति का अनुमान किया जाता है, क्योंकि धारम्य में इनमें मंत्रादों का समावेश था। नृत्य और गान के साथ इनका साम्यबन्ध होता ही वे यक्षगान की संज्ञा से अभिहित किए गये।

दक्षिण भारत में कर्नाकनी नृत्य की दो भिन्न शैलियों में यक्षगान का भी उल्लेख किया जाता है। एक कल्पुड़ी और दूसरी यक्षगान। दोनों शैलियों का प्रदर्शन करने वाली मंडलियाँ याँच-गाँच घूमती हैं। चूँकि इनके नृत्य कर्नाटक और बेपनूया कर्नाकनी की याँच मंडलीनी होती हैं। इसलिये इन्हें लोक मान्य की उस सेमी में स्थान प्राप्त है जो पौराणिक कथानकों के आधार पर संगीत और नृत्य की सहायता से प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ है।

इस विषय में विद्वानों ने अपने भिन्न-भिन्न शक्तियों से वास्तविकता को बौद्धिक तर्कों का बाधा पहुँचा दिया। साधारणतया बेदूरि शास्त्री का मत स्वीकार करना उचित मान पड़ता है।

### यक्षगान की प्राचीनता

यक्षगान नृत्य नाट्य है जिसमें गीतबद्ध मंत्रादों का प्रयोग होता है। मन्त्रे मन्त्रे बोल पावों को सहज ही कर्तव्य रहते हैं। इनमें वर्णन का प्राधान्य होता है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में वे नाटक न केवल मनोरंजन के साधन थे अपितु प्रचार में इनका महत्त्व उल्लेख होता है। ११वीं एवं १२वीं शताब्दी के जैन ग्रन्थों में यक्षगान नाटक का वैसी गीत (लोक गीत या साम गीत) कहा गया है। काक शीय युग में इसे बम के साथ पौराणिक शक्तियों का प्रदर्शन करने का माध्यम बनाया गया। साधारण लोच ही इनमें भाग लेते ही वे नगर की बेदमार्ग इनमें होती थीं। काकतीय प्रठापत्र की बर्या यायसदेवी और भीमेश्वर पुराण की एक बेदमा पत्र 'हिरानि वेप बारम कर बिद्यात्म करती थीं।

बाघुकी शताब्दी में दक्षिण भारतीय राजनीति में काफी परिवर्तन हुए। देश में एकाका का समावेश और सामंतवाद का प्रबल होना कला के भिन्न शक्ति का कारण हुआ। पन्धु जगता के मनोरंजन कर्तों के लोकोपारी रहे। नगरों के मध्य समाज में यक्षगानों का प्रचार कमजोर करने लगा था। यीनाय कविने (१४वीं-१५वीं शताब्दी) यक्षगानों की दो प्रशंसा की है, उसके-यह विवित होता है कि राजमार्गों में इन्हें प्रोत्साहन प्रदान किया। १६वीं शताब्दी के कवियों ने राजमार्गों में प्रोत्साहन बाहर लाने के यक्षगानों की रचना की। राजा नृसिंह रायुड (१६वीं शताब्दी) ने मण्डभावा कवि को 'नमकवि' और 'नामक कवि' नामक बख्तानों पर अनुमति दत्त किया था।

द्वितीय पुरुष वेप धारण कर बख्तानों में भाग लेती थीं। विपत्ती पुरुषा नामक स्त्री का उल्लेख प्राप्त होता है या 'प्रभावती प्रधुम्न' और 'मंत्रावतार' नाटकों में अभिनीत करती थीं। 'रंग जम्मा' नामक स्त्री का भी उल्लेख मिलता है जो मन्त्रावतार विनाय नाट्ययु' की लेखिका बतायी जाती है। तबसे राजमार्गों को इन नाट्य का भेद प्राप्त है कि उन्होंने यक्षगानों में मंडल नाट्य शैली का प्रवेश कराया। रंग जम्मा राजमार्ग के ही राजकुमार विजय राजक की स्त्री थी। और यक्षगान मंत्र है जगने इन परम्परा का काफी धारा बताया है। उनके गानम नाम में मधुरबाणी और रामप्रशम्मा जैसी कवियों को इसी आधार से आधार प्रदान किया गया था।

यसमान की यह परम्परा डेट १७वीं शताब्दी के अन्त तक साहित्य में प्रमुख स्थिति रही। १७वीं शताब्दी के पश्चात् सन्मय १०० माटक ऐसे मिले गये जिन पर यसमान का पूरा प्रभाव है।

यसमान माटक की शक्ति बम्बई और हैदराबाद के मिहलबर्दी नामों में कुछ लोक माटक 'बीहड़ घट्ट' यर्नान् यस्ता के माटक या कथाकली (गुने रंजनीय माटक) तथा 'घट्टपत्त' (उत्तम रंजीय माटक) के नाम से प्रचलित है किन्तु उन पर सामुदायिकता का पर्याप्त प्रभाव है। यह बात उत्सवगीय है कि वे लिखित नहीं हैं।

इन दोनों माटक प्रकारों का प्रकार कर्नाटक में भी है। वस्तुतः वही उनकी मूल मूलि है। मूल्य और संगीत इनमें प्रधान रूप से अभिनय के सहायक अंग हैं। हिम्मत या साहस द्वारा महाभारत और रामायण की कथाओं केवला वैदिक वाक्यों का आधार प्रायः इन माटकों में मिला जाता है। कथन का शारीरिक साहित्य पद्यबद्ध है। घट्ट सोफियावन में माटकों के कथानकों पर पद्य की छाप होना स्वाभाविक था। छवपी में ऐसी कितनी ही सामग्री उपलब्ध है जो रंजनीय के लिये उपयोगी नहीं या एकदली है। स्थानीय बीरों की कथाओं पर आधारित ये माटक कथाविद् वीर-गिक प्रपञ्च संस्तुत कर्णों की वाक्यों की धरोहर अधिक शक्ति रखे हैं।

यसमान माटकों की कथावस्तु में ही रामायण महाभारत और रामचर्य की शौर्यविक एवं लोकप्रिय कथाओं से भी जाती है। किन्तु वह लोक भावों से प्रमुख रचित होकर अभिनेताओं के कौशल और मुखार संवादों का स्वयं पाकर अधिकतर लोकपरक हो जाती है। समय समय पर सामाजिक मान्यताएँ इनमें प्रवेश पाकर परम्परा का स्वरूप धारण करती गईं। अनेक वर्षों के पश्चात् विवाह संघट्ट घट्टनामा प्रमुख का जीवन चरित्र मंच का विषय बनाया गया—जो वस्तुतः परम्परागत रीति में प्रवेश कर जा सकता है।

## कथाकली और यसमान

कथाकली कैरल का मूल माटक है। कला की दृष्टि से इसकी सूक्ष्म धर्म व्यक्ति लोकजीवन की अनेक धर्मों में समुचित व्यञ्जना है। लोकपरक प्रतिबन्धित के साथ शास्त्रीय पक्ष भी कथाकली में समावृत्त है। पृष्ठ में कथापाठ होता है और मंच पर पात्र अपनी मूक मुद्राओं और अभिनय द्वारा माटकीय तत्त्व की उपलब्धि करते हैं।

यों ही कथाकली की प्राचीनता निराश्वेह मान्य है तथापि १७वीं शताब्दी के समयग इसका विकास हुआ। इसकी उत्पत्ति के विषय में अनेक अनुमानियाँ प्रचलित हैं। दूसरी शताब्दी में रचित तामिल काव्य 'भिलपविकरम्' में एक नरकीवार काठ का उल्लेख मिलता है। उसके समय में प्रचलित 'कुञ्जपत्तम' से कथाकली का संबंध जोड़ा जाता है। किंबन्ती है कि काशीकट के राजा जयोरिन उत्कालीन प्रचलित लोकमूल्य के आधार पर 'कुञ्जपत्तम' नामक एक माटक-रचना कथाकली रीति में तैयार की। उनकी कथाविद् दूर-दूर तक फैली। परिणामतः एक पड़ोसी राजा ने मन्मूरी ब्राह्मणों की सहायता से 'उमपत्तम' तैयार किया। 'कथाकली' शब्द का अर्थ है संकीर्ण में निबद्ध कथा। मूल होते हुए भी अभिनय प्रसाधन कथाकली में प्रमुख है। आधारन से उत्तम मंच पर 'निबन्धना' (पद्य) की व्यवस्था केद्वारे सगाना रूप-

सम्माना सभी प्रकार के पात्रों का अभिनय बर्बर (मगर) मुखम (मूर्धन) बाँसुरी मँजीरे घाँघि बाँसों का मिसा मुला बाँसवरण नाट्य की सृष्टि ही अधिक करता है। नाट्यों में जिस प्रकार वृष्य योजना होती है ठीक उसी प्रकार अनेक दृश्यों में एक ही कथा प्रस्तुत की जाती है।

ग्राम केरल के कवाकसी नृत्य से यशगान नाटकों की तुलना की जाती है। वहाँ तक वेदमूला आधर्मिकता मुझाएँ और नृत्य का प्रवर्तन है यशगान नाटक—कवाकसी के काफी निकट है। अन्तर केवल अभिव्यक्ति में है। दोनों के प्रदर्शन और अभिनय का ढंग सम-सम है। विषयवस्तु के संगठन में अधिक सौन्दर्य यशगान नाटक के अन्तर्गत निहित है। यद्यपि लोक-कलाकारों द्वारा इनका निर्माण होता है तथापि लोक मंच की स्वाभाविक विशेषता एवं सौन्दर्य रचना की मात्र परिमाण में कहीं भी अधिक नहीं बीच पड़ता। कवाकसी का आधार कम्पी रचनाओं में से जुने हुए सुन्दर घंघे होते हैं तथा यशगान नाटक अपने घाँघ में परिपूर्ण और व्यवस्थित रचना होती है।

यशगान नाटक की कोटि में ही बिने जाते हैं। भरतमुनि ने नाटक को वृष्य काव्य कहा है। यद्यपि उसमें पद्य और गद्य दोनों का समावेश आचार्यों ने स्वीकार किया है। यशगान नाटक में गीत और नृत्य का सामंजस्य अनुरूप रूप के अनुसार पाया जाता है। संवाद का निर्वाह भी गीतों द्वारा होता है। कथा गीतों के माध्यम से क्रमशः बहती जाती है। नृत्य के साथ पात्रों का अभिनय प्रदर्शन और संवाद गायन इस ढंग से चलता है कि लोग बंदों बैठे रहते हैं। कंसा ही मात्र क्यों न हो वह पक्ष में भाग्य करेगा। इससे कहना होता कि ऐसे लोक-नाटकों का अधिकार मात्र लोक-गीत है।

लोक-गायकों की परम्परा ने ग्राम और कलात्मक के घाँघों में यह कथा समझाने लगी। जुने मंच पर इन नाटकों का प्रदर्शन समय-समय पर गाँवों में होता है। गाँव के किसी भी व्यक्ति अपना कुछ लोगों के मिले-जुले सहयोग से नाटक-मंडलियों की प्राथमिक कठिनाइयाँ हल हो जाती है। सहयोग देने की यह प्रथा भारतीय घाँघों में कोई नई बात नहीं है। नाटक प्रदर्शनों में कलात्मकता लोगों द्वारा नृत्य-नाट्य घाँघि उत्सवों के आयोजन करने के अनेक उद्देश्य मिलते हैं। सर्वप्रथम ही कला-व्यवस्था घाँघि से प्रवृत्त होकर सहायता प्रदान करते हैं। सामिल के प्रसिद्ध कवि इनाम ने अपने काव्य रत्न में लोक की राजधानी पुष्कर के मेले का वर्णन किया है। उसमें नृत्य नाटक और अन्य मनोरंजन घाँघों का विस्तृत वर्णन किया है।

यशगान यशगान नाटक की रक्षा का मेघ लोक-गायकों को है। इन नाटकों के बिने किसी तरह का सम्मान नहीं है। जुना मंच और दर्शकों की कोई सीमा नहीं। कुछ वर्ष पूर्व इस परम्परा को जीवित रखने के हेतु कवि बलराज के केरल कला-केंद्र की नीति यशगान कला केन्द्र स्थापित करके एक समिति की स्थापना की गई है। इस समिति के प्रयत्न से विभिन्न समाज का दृष्टिकोण इस विद्या में अभिवृद्ध होने लगा है।

## विधि माटकम्

'विधि माटकम्' या 'विधि मानवतुम्' लेख का लोक भंड है। पञ्चवाम की घनेक विशेषताएँ इसमें सम्मिलित हैं। अतएव एक दृष्टि से यह जनमान का ही भंड है। विधुनी पतालिनी में इनका मूल प्रचार रहा। 'कुत्ताभिगमम्' नामक धीनाय कवि का माटक इसी धेनी में छाता है। 'विधि माटकम्' का अर्थ है वह माटक जो मार्ग में प्रवृत्त हो। स्पष्ट है कि ये माटक लोक जन के प्रवृत्त साधन ही थे। जहाँ जनता में इनका अत्यधिक प्रचार रहा वहाँ हिन्दू धर्म में धातकों द्वारा भी इसे प्रेरणा मिली। कणभुङ्गी की काष्ठान कलाकार मंडलियाँ गाथा करके अपने प्रवेश की जनता की इनके द्वारा प्रायः मृत्यु का विधा करती थीं। गाँवों की जनता के लिए इन माटकों में मनोरंजन की वह प्रणाली उपलब्ध है जिसका वे परम्परा से उपयोग करते आ रहे हैं। इनमें एक या दो पात्र ही भंड पर छाते हैं। किराये समूह बनाकर मृत्यु करती हैं। इन्फ्लेमेटोरी की मृत्युविषयक द्वारा देरी भंड में बड़ी सम्भवतःपूर्वक विधिवत्माटक का विषय बनाया गया है। भंड प्रायः मंदिर के लुने प्राय में प्रवृत्त साधारण ऊँचाई पर बनाया जाता है। पञ्चवाम की तुलना में विधि माटकम् प्राचीन अधिक है।

## लील बोम्मसु

लील बोम्मसु जमने की कठमुत्तमियों का लेख है। रामायण और महाभारत की कथाएँ इनके द्वारा परब पर बहारी जाती हैं। वृक्षपार बड़ी कृपलता से इन पुस्तकियों को संवर्धित करता है बीसा कि कठमुत्तमियों का उपासा करनेवाले किया करते हैं। पुस्तकियों के स्थान पर कोई भी व्यक्ति घरे के पीछे से संवर्ध-वापन करता है। कहते हैं कि इंडोनेशिया के बोयोग माटकों में इस तरह के भारतीय मनोरंजन की प्रणाली का काफी प्रकाश अछिप्त होता है। हास्य का प्रकाश देना करने का प्रयत्न वृक्षपार के यह पोपी बराम्बर करते हैं। 'लील बोम्मसु' प्राचीन होने हुए भी अत्यन्त प्राचीन है।

## कामनकोट्टु

पीप के महीने में बहिन माधव में पीपान कामन उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव साधारण जनता विभिन्न प्रकार के मनोरंजन का आयोजन करती है। इसमें एक नाट्य का दृश्य है 'कामनकोट्टु'। 'कामनकोट्टु' कायदेव और रति की पीपानिक गाथा पर आधारित नाट्य है। जो पात्र कामन और रति का रूप धारण कर मृत्यु करते हैं और बादक पूर्वक और नयड़ी के साथ कथा पाते हैं। लंका में भी जो बहिन भारतीय परिवार धमकर अर्धे हैं वे भी यही मृत्यु नाट्य प्रति बर्ण करते हैं।

जहाँ तक बहिन भारत में लोकनाट्यों का प्रश्न है उनके पीछे पीपानिकता अधिक है। धार्मिकता का प्रभाव कर्नाटक सभी क्षेत्रों में प्राचीन नाट्य मनोरंजन की प्रवृत्त प्रतीत भावना से अनुप्राणित कहें जा सकते हैं। प्रायः देर रात्रि में प्रारंभ होकर वे सुबह तक चलते हैं। उत्साह की कमी भी नहीं पायी जाती। साधारण से आयोजन पर भीड़ हो जाना स्वाभाविक है। बड़े पात्रों में लेख भर कर प्रकाश की व्यवस्था रूप-उज्ज्वल भाव प्राप्ति का ठाट बैकते ही देखते प्रम जाता है। कोई लिखित सामग्री नहीं होती। सभी पात्र अपनी स्वाभाविक धम से बीसते हुए कथा को धार्य बढ़ते हैं।

दक्षिण भारत के वन्य लोक-नाट्यों की धारणा एक ही है। नायिक कालों से परिपूर्ण होते हुए भी सामाजिक जीवन का विश्व समान है। समस्तकार और हस्त-परिष्कार की धारणा उनके अतिथीय वन्यगुणों का प्रतिनिधित्व करती है।

तामिल तेलुगु और कन्नड़ी भाषाओं में अनेक एक-दूसरे से मिलते-जुलते रूप मिलते हैं। द्राविड़ी संस्कृति के अध्ययनों को इन लोक-नाटकों में उत्तर भारतीय लोक-नाट्य परम्परा की अपेक्षा संस्कृत नाट्यों की परम्परा का स्पर्श अधिक मिलेगा। द्रामीय वन की स्फूर्ति और साम्य कर्नाटक और तामिल के संस्कारों का प्रायोग्यवाच यक्षगान विधिनाटक, और लोचबोम्मत के स्वरों में स्पष्ट होता है।



# जिनिथ प्रहसन

## बिदेसिया

'बिदेसिया' बिहार के भिखारी के भयलों से विकसित भोजपुर जनपद का ऐसा नाट्य है जिसमें प्रेमकबाहु, सामाजिक समस्याओं के सुन्दर में अभिनय का आचार बनाई गई है। 'बिदेसिया' की विशेषता उसकी धार्मिक भाव-व्यञ्जना और सामाजिक मर्यादा पर कड़ी नजर है। आज के भोजपुर और बिहार क्षेत्र में इस प्रकार के नाट्यनाट्य प्रायः ऐसे और मिले जा रहे हैं।

## कड़ा

राजस्थान में बीरसर पूर्ण एक नाट्य खेती कड़ा के नाम से विख्यात है। कड़ा में किसी लोक कथा का गायन एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाता है पर उसकी प्रमुख पंक्तियाँ पूरा समूह दुहुँछता है। बाघ के नाम पर मरारा ही टेक सेतने पर किकिकाता है।

## जट्ट-जट्टनी

मिथिला, उत्तर बिहार और भोजपुर क्षेत्र के अनेक ग्रामों में पीलों से भरा यह सभ्य प्रहसन बहुत प्रचलित है। भूक अभिनय इसके सम्बन्ध है। आचारव्यवस्था बिना दण्ड के गीत ही पीठ में यह प्रहसन पांच घंकों तक विस्तार पा लेता है। घंकों की मान्यता वही तो आचारव्यवस्था लोगों में नहीं होती पर कथानक के मोड़ ही घंकों की सम्मानना अपने आप कर देते हैं। बीमासा लगते ही स्त्रियाँ इस प्रहसन द्वारा एकत्र होकर श्राव-मनोरंजन करती हैं। जो बल में विवश होकर इसकी आयोजना की जाती है। एक बल की प्रमुख पाट (जट्ट) और दूसरी की पाटनी (जट्टनी) बनती है। दोनों बल एक दूसरे के समक्ष विरोध मुद्रा में खड़े होकर अभिनय के साथ पीलों ही द्वारा उत्तर-प्रत्युत्तर हैं। जो स्त्री पाट का अभिनय करती है वह अपने माने पर मोटा खाका या पगड़ी और तन पर बड़ी पहन लेती है। खेप पान बकरत के अनुसार जो भी मिले उसे पहनकर अभिनय का आलापरव्यव बना लेते हैं। प्रस्तुत प्रहसन में किसी बाघ की भावव्यक्तता नहीं होती। संभवतः मरारा में ही समझो। वही बीड़ी की स्त्रियाँ एकत्र हो सकती हैं वही जगह संभव के लिये पर्याप्त है। पीले "जट्ट-जट्टनी" का उदाहरण 'चट्टूच' किया गया है -

पाट कहता है

‘बल बल है जट्टिन, जट्टनी के लीर ।

हल डीकवा बेसाहल जट्टनी के लीर ॥

(“हे जट्टी मरुता के किनारे बली वहाँ में तुमने टीका करीब रूपा ।”) जट्टी

इतकार की मुद्रा में कहती है —

## जट्ट-जट्टनी

‘टीकबा मँगलीघो जट्टा टीकबा न भैत जट्टा ।  
मँगलीघा उबास मोर, हम नहीं जएबों जमुनमाँ के तीर ॥’  
( “ मैने तुमसे टीका माँया था तुम नहीं लाय । मेरी माँय उबास है  
यमुना के किनारे नहीं जाऊँगी । )  
जट्टा उत्तर देता है

‘जब जब टीकबा लसिघो जट्टिन डीकबा काहे ने येम्हन हे ।  
हरी-हरी चुनरी समरिया नैहरा काह यल हे ॥

माय बाप निरयन जट्टिन बचि-बचि सतखो हे ।  
मँगलीघा उबास जट्टिन नैहरा का येल हे ॥’

( “ जब-जब मैं टीका माया तब-तब तुमने पहना क्यों नहीं ? पीहर जाने से  
तेरी हरी चुनरी बुझि हो गई । हे जट्टी तब माँ-बाप गरीब हैं वे तब टीका बेच कर  
खा यले । अब तो तेरी माँय उबास ही रह गई, तू पीहर क्यों गई ? ” )

अब जट्टी की मूक भागनीमा प्रारंभ होती है । जट्टा मनाने का धमियन करता  
है पर जट्टी मानती नहीं । वह समक-समक कर दूर हो जाती है । यहाँ से दूधप संक  
प्रारंभ होता है । जट्टा सीस कर कहता है -

‘लम्भ के बलिह जट्टिन लम्भ के बलिह न ।  
जैसे गाँव कौरबिया लम्भे तैसे लम्बिह न ॥

( “ हे जट्टी, लग्गतापूर्वक बनो । जैसे कच्चे गाँव की टहनी मुकी प्यनी है  
वैसे ही मुक कर खो । ” )  
जट्टी उत्तर देती है -

‘न लम्भखो न लम्भखो हो जट्टा न लम्भखी न ।  
जैसे घोहूयन लाप ऐँकरी तैसे ऐँकरी न ॥

( “ हे जट्टा मैं नहीं लग्गता से खूबी । जिस प्रकार यहुँयन सर्व गबोंगल होकर  
खता है वही तरह खूबी । ” )  
जट्टा

‘लम्भ के बलिह ह जट्टिन लम्भ के बलिह न ।  
जैसे गाँव के पुगीह लम्भे तैसे लम्बिह न ॥

( “ हे जट्टी लग्गतापूर्वक बनो । जिस तरह गाँव की बसुएँ धवनज हाकर बसती  
हैं वही प्रकार बनो । ” )  
जट्टी

‘न लम्भखो न लम्भखो हो जट्टा न लम्भखी न ।  
हम त बाबा के बुलारी बीघा, ऐँठ बलखी न ॥

( “ हे जट्टा मैं नहीं लग्गता से रह सकनी । मैं धरन पिता की प्यापी कम्पा हूँ  
मैं तो हठना कर ही खूबी ” । )  
अब जट्टा पमकी की मुँहा में बहना है

‘लम्भ के बलिह है जट्टिन, लम्भ के बलिह न ।  
हमर बाबा सरदार जट्टिन, बेपचाए देवी न ॥



(“हे जट्टी गणतापूर्वक बनो। नहीं तो मेरे पिता घरदार हैं मुझे बैबना बुझा।”) इस पर जट्टी भी तयक कर कहती है—

‘म सम्मचो न सम्मचो हो जट्टा न सम्मचो न ।

हमर बाबा जमींदार जट्टा, छोड़ायें सेती न ॥’

(“हे जट्टा मैं नहीं गणतापूर्वक रहूँगी। मेरे पिता जमींदार हैं मे मुझे घुड़ा सेवें।”)

दूसरा घंटा संपाप्त होकर सब तीसरा घंटा प्रारंभ होता है। इसमें जट्टा पर देश जाने की टैयारी करता हुआ कहता है—

‘हमर त दोपिया बेब जैन जट्टिन

घब जट्टिन जाये देह बिदेस ।

हमर त कुरता बेब जैन जट्टिन,

घब जट्टिन जाये देह बिदेस ॥’

(“हे जट्टिन तुम तो कुरता-दोरी बेब कर ला गई, अब मुझे परदेस जाने दो।”)

जट्टी इनकार के मुझा में कहती है—

‘घोड़ से उत्तिय तिलाय बेब हो जट्टर,

पेहूगय बेब हो जट्टा ।

जनि जट्टा जाह बिदेस ॥’

(“हे जट्टा मैं उससे भी उत्तम तिलाकर तुम्हें पहनाऊँगी। तुम कृपया बिदेस मत जाओ।”)

जट्टा—

‘हमर त दोपिया बेब जैन जट्टिन

घब जट्टिन जाय देह मोरेंग देस ।

हमर त घता बेब जैन जट्टिन,

घब जट्टिन जाये देह मोरेंग देस ।

(“हे जट्टी मेरी बीवी और ब्रता तो तुम सब कर ला गई। अब मुझे मोरेंग देस जाने दो।”)

जट्टी रीते की मुझा में अनुभव जरे धन्य में कहती है—

‘मोरेंग मोरेंग सुमिये, मोरेंग मति जायु हो जट्टा

मोरेंगवा में घसली जोगियाँ हो जट्टा ।

उलझियो न ताके मझिघो न ताके हो जट्टा ॥

(“मैं मोरेंग-मोरेंग सुमयी हूँ मोरेंग नहीं जाओ। सुमयी हूँ कि मोरेंग में घसली जोगियाँ रहती हैं जो जोग करने के पश्चात् उत्तम कर देखती भी नहीं।”)

जट्टा—

‘मोरेंग मोरेंग सुमिये मोरेंग हय जाएव है जट्टिन ।

मोरेंग से डीकवा नें जाएव है जट्टिन ॥

मोरेंग में घसली जोगियाँ है जट्टिन ।

घोड़ के पैरों के तोरा सलजाएव है जट्टिन ॥’

( हे बट्टी मोरंग-मारंग मुनना हूँ तो घबराव जाऊगा । धीर वहाँ मे टीका भी भेना खाऊंगा । मोरंग की घमभी जागिन का टीका पहना कर तुझे सजनाऊँगा । ) यह मुनकर बट्टी कठ कर नैहर चली जाती है । चीमरा धंर समाप्त हो जाता है । पीछे धंर के प्रारंभ में बट्टा बट्टी के नैहर जाने का अभिनय करता है । अपने पक्ष में बट्टी फिर जाती है और जल्दा बट्टी के माँ-बाप माई-जीआइ में परिणत हो जाता है । यह बट्टा अपने स्वमुख से पूछता है

‘बाबूजी बाबूजी, यही नपरिया जट्टिन के घबराव देखली न ।

( बाबूजी मैं बट्टी का हम नगर में घाने देखा हूँ । )

जबनूर की धार से उत्तर मिलता है

‘नहीं है नहीं है यही नपरिया, जट्टिन न घाएल है ।

( नहीं नहीं जट्टिन यहाँ नहीं घाई है । )

बट्टा

‘बाबूजी बाबूजी यही नपरिया

जट्टिन के बाजर कूठ देखली न ।

जेंबना बनवाते देखली न

जेंबना जेंबते देखली न ॥

( बाबूजी मैं इसी नगर में बट्टी का बाजर कूठ देखा हूँ । खोई बनाते धीर जाना खान भी देखा हूँ । )

‘नहीं है नहीं है यही नपरिया,

जट्टिन न घाएल है ।

( नहीं नहीं यहाँ बट्टी नहीं घाई है । )

यह मुनकर बट्टा निराम होकर चला जाता है । फिर बट्टी के माता-पिता बट्टा के मन में बट्टी का जेम परिक्रमण कर देते हैं और प्रचारित करते हैं कि वह मरा पुत्र “रौहान” है । “रौहान” की बट्टी को एक बाबू हो जाता है । उसके माता पिता मिथी मगाने जाने एक जरीह की समाज करते हैं जो उसके बाबू का रक्त बूम कर उसे स्वस्थ कर दे । बट्टा तो चुपके-चुपके सम्पन्न बन ही रहा था वह दुग्ध जरीह का बस बनाकर वहाँ पहुँचा है । जरीह को पाकर उसके माता पिता धनुरम करने हैं

‘रौह रास के हाथ के बाता, रौह रास के हाथ के धंयूडी ।

हमहें देखी हो बर भी, रौह रास के देह छोड़ाय ।’

( ई बरजी रौहान के हाथ का बाता धीर धंयूडी में तुम्हें पुनस्कार देंगू । इन पक्षों का हो । )

जरीह ‘रौह रास के हाथ के बाता, रौह रास के हाथ के धंयूडी

हमें नहीं भेरो बाबू राह रास के देखो छोड़ाय ।’

( राह रास के हाथ का बाता धीर धंयूडी में नहीं नूँगा । परन्तु हमें यों ही पक्षों का दूँगा । )

इसके बाद जरीह रौह रास की मरहम-पट्टी में नमज्ज हुआ है । रौह रास स्वस्थ हो जाता है । यह जरीह की बट्टा को कुछ भी पूछेह नहीं न रहा कि रौह

## १ कठपुतली का खेल

कठपुतली के रोनों का सम्बन्ध सुदूर इतिहास की गहराइयों से जुड़ा हुआ है। यह बताना कठिन है कि यह खेल कितना प्राचीन है जबकि इसका मूल स्रोत क्या है। भारतीय पूर्वकालीन साहित्यिक ग्रन्थों में चीन के प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों इन्द्रिय मन्दिरों और चीन के साहित्यिक विचारों में इसका उल्लेख मिलता है। भारतवर्ष और उसके निकटवर्ती देशों में तो यह खेल अभी भी किन्हीं स्थानों में सीमित है। नाटकों में प्रयुक्त 'सूत्रधार' शब्द से कठपुतलियों के सूत्र द्वारा नियंत्रित करने का अर्थ ही सम्बन्ध है। सूत्रधार का प्रयोग इन्हीं कठपुतली के खेल से नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त गया 'सूत्र निबन्ध' है। इसमें स्पष्ट नहीं कि कठपुतली का नाम प्राचीन काल से ही लोगों के मनोरंजन का सर्वप्रिय साधन रहा है। भारतवर्ष में आज भी राजस्थान मानवा सीराष्ट्र महाराष्ट्र और मलबार प्रान्त के कुछ भागों में यह परम्परा-प्रचलित खेल विद्यमान है। भारतवर्ष के बाहर इसका जो रूप मिलता है वह निम्नलिखित भारतवर्ष के ग्रन्थों में है। पश्चिम में साहित्यिकता का स्पर्श पाकर अब तो बिस्मयों तक में यह खेल सम्मान पाने लगा है जहाँ लोग प्रवेश पाने में तैयार हैं। कहना न होगा कि कठपुतली का नाम अपनी सर्वप्रथम विशेषताओं और अपनी चमत्कारिक कला एवं प्रभाव के कारण ही भारत तथा चीन जाया और सुदूर पश्चिम के कुछ देशों में मशहूर होकर लोक-मनोरंजन का माध्यम बना हुआ है।

### कठपुतली का निर्माण

कठपुतली के लिये साहित्यिक ग्रन्थ के अनुसार नाट्य कला की पुतली है पर उसके निर्माण में काठ के अतिरिक्त कपड़ा और चमड़ा भी काम में लिया जाता है। कठपुतली लम्बे-चौड़े धाकर की बुझिया की तरह लकड़हार पुतली होती है जो रंगीन चमड़ेवाली और कठिन धाकर-अकार एवं लकड़ा के साथ तैयार की जाती है। बेहली तथा जयपुर-जोधपुर में कठपुतलियाँ ठीकर करने वाले कई पेसेवर लोग रहते हैं। लोग केहरा लम्बी मछली की आँखें धाँके लगी जीर्ण और लम्बे कानों तक लिये हुए धोठों की देकर पुतलियों की लात जब पहचानी जा सकती है। उनमें अधिक बदन नहीं होता। कुछ देशों में प्लास्टर के लोचों का प्रयोग किया जाता है जिससे कि आकृति में समानता बनी रहे और काम भी लम्बी हो जावे। जायपुर की पुतलियों में व्यक्ति के ग्रन्थ लम्बाई-चौड़ाई होती है। प्रत्येक पुतली के पीछे सूत्र बाँधने के लिए हुक होता है। इन पुतलियों को बराब पर ऊपर से रंग रोगन लगाया जाता है। राजस्थानी पुतलियों का रंग राजस्थानी जैसी से मिलता है। पश्चिमी पुतलियों की बनावट साहित्यिक रंग की होती है।



‘कठपुतली’ के साथ गानेवाली महिला





## मुगल दरबार

पुतली का खेल करने वाला किसी भी यशवीर्यवान् स्थान पर एक चारपाई लगी करके उसने प्रागे अपनी पुतलियों का मंच बना सेठा है। मारतवर्ष में मुगल दरबार जैसे जैसे स्तम्भों और मेहराबों के पीछे पुतलियाँ संवामित की जाती हैं। दरवाजा सामने बैठते हैं जिससे उन्हें प्रत्येक गतिविधि दरबार में होती हुई चीलपी है। दरबार की छत लुनी हुई होती है जहाँ से सूत्रधार पुतलियों को उतार कर अपनी प्रेक्षकों के कुशल संवादन से सजीवता का आभास उत्पन्न करता है। यह दरबार रंगीन वस्त्रों का बना हुआ होता है जो कहीं भी रस्सियों से बाँधकर चारपाई के प्रागे आसियाने की भाँति लटका कर रिया जाता है। दरबार की ऊँचाई प्रायः ३ से ४ और लम्बाई ८ से १० फुट तक होती है। और उसी प्रमाण में पुतलियाँ होती हैं। राजाओं की पुतलियाँ बड़ी और दरबारी तथा आम लोगों की पुतलियाँ छोटी होती हैं। साधारण व्यक्ति राजा के सम्मुख घाटे हुए काँपते हैं। मर्तको एक विशेष ढंग के साथ दरबार में एक हाथ से बाँधे का छोर उठाये नृत्य करती है और पाद ही डोलकिया पाते हुए तान देता है। नृत्य की साधारण गति कम्बल से बहुत कुछ मिलती है। शूरवीर यशवत् तलवार घुमाते हैं जिससे एक गतिमय आकाशचरित्र बन जाता है। चौबपुरी पुतली वाले तो इस कला में अत्यन्त निपुण हैं।

## कठपुतली के प्रकार

प्रमुख रूप से कठपुतली के चार विविध प्रकार उल्लेखनीय हैं —

१ भारतीय कठपुतली — जिसे सूत्र द्वारा संवामित किया जाता है। लंका और बङ्गा में भी इसी प्रकार की पुतलियों का प्रकार है। इन पुतलियों के रंग एक-दूसरे से जुड़े हुए और लचकदार होते हैं। यह सबसे अधिक प्रचलित प्रकार है।

२ नीबों वाली पुतली — (मोच डोल) का प्रकार इंग्लैण्ड में 'पंच और बुडी' फ़ॉस में 'बुनगान' एवं जर्मनी में 'किसपर' के नाम से पाया जाता है।

३ लसाई वाली पुतली — नीचे की ओर से लसाई द्वारा संवामित की जाती है। तुर्किस्तान और चीन में इसका प्रचलन है।

४ चीड़ी पुतली — इसका भी एक प्रकार है जो लसाई द्वारा संवामित होती है। पर मुख्य पुतली की विशेषता उसकी परछाई को ही पर्व पर दिखाया जाता है। एशियन भारत में 'पाणाकुबू' के नाम से यह पुतली प्रसिद्ध है।

## प्रदर्शन के विषय

उत्तर भारत के गाँवों में कठपुतली रो खेल किराणियों की आवाज देकर बूमने वाले कई व्यक्ति उन दिनों रीज पड़ते हैं जब कि माघ मासी समय में होते हैं। राजस्थानी पुतली (जिसे भारतीय पुतली कहा जा सकता है) अपना विविध महत्त्व रखती है। मनामार में इसी पुतलियों के द्वारा रामायण महाभारत आदि की कथाएँ प्रदर्शित की जाती हैं। मंदिरों के उत्सवों के प्रथम (पूरम् या बेसा) पर इनके रस आयोजित होते हैं। कुबूजर, परम्परा से कठपुतली के खेल करने वाले इसी समयों पर अपना काम करते वार्षिक आय के रूप में कुछ प्राप्त करते

है। ऐसे दिवाने का स्वाग भंडिर भवना कोई नियोजित सुनी जगह पर ही 'कुपुमंरुपम्' के नाय न बनाया जाता है। उत्तर भारत में रामायण भवना महा भारत की कथाओं के बजाय ऐतिहासिक घटनाओं भवना सामाजिक हास्यों के प्रदर्शन का रिवाज अधिक है।

राजस्थान की कठपुतलियों के पृष्ठ में ऐतिहासिक कृतियों का भवना लोक-प्रचलित कथाओं का समावेश है। राजा अमरसिंह राठीर के धीरे बर्नन और प्रदर्शन में कठपुटी पेचेवर बहुत भिपुण है। राजा का सेन मूलन दरबार से धारण होता होता है। सात किने में दरबार भग है। डासक की बाप के साथ पीतकार पीत-कथा की प्रारंभ करता है। धरुवर और साहजहाँ का भवना है। अमरसिंह दरबार में नहीं है। साहजहाँ अमरसिंह की गुस्ताफी के पछा होकर तुरन्त रण्ड पोषित करता है। अमरसिंह का राजपूती धूम लीम उठता है। वह बाबसाह की इस भाना का विरोध करता है। इस पर बाबसाह अमरसिंह को सुरत दरबार में उपस्थित होने की भाना देता है। अमरसिंह रण्ड की रकम जमा करने के बहाने दरबार में जाता है और अपनी लज्जत से कई व्यक्तियों को पीत क घाट उतारता हुआ बाबसाह पर हमला करता है पर लीजान से वह जल जाता है। घटना का मीटिक स्वरूप कुछ इसी प्रकार है।

तथापि वह घटना सन् १६४४ की है, पर समस्त उत्तर भारत में कठपुतली-वालों के द्वारा वह अपने लोकसाही रूप में जनी जी जाती है। इसर मूलकार अपनी कुशलता से अमरसिंह की विधेयताओं की भाटकीय ढंग से प्रचलित करता है जबर उसकी सहयोगिनी डोलक वाली अपनी मारबाही धुनों में घटना की माली है और डोलक की सेज बापा और मूलकार की लीटी के साथ पुतलियां लचककर चपलतापूर्वक सेन में रीनक जाती है। छोटे से मुनन दरबार में पृष्ठ कोन और साहस के कापों का दृश्य देखने योग्य होता है।

मधुकर के सब्बों में मूलकार को कलाकार, कारीगर, संघीतज्ञ भाट और श्रमूज रूप से किस्तागी होना पड़ता है, सभी वह कुशलतापूर्वक अपनी कठपुतलियों द्वारा प्रभावित कर सकता है।

बासकों के लिए इन पुतलियों में ऐसी लजीबता है जो परिषों के लोक से कम नहीं। राजपूताने के साहस और मुनन दरबार का वातावरण अस्पता और पुतलियों के प्रत्यक्ष से उभर जाता है।

### संरक्षण की आवश्यकता

पुतलियों का भवना संसार है। इस प्राचीन लोक-कला का संरक्षण जरूरी है। कठपुतलियों का सेन करने वालों की अपनी सात विधेयताएँ हैं जिन्हें वे परम्परा से सहने हुए रहते हैं। कठपुतलियों का एक साथ जमाव बासावरण में गति देना करना और ध्वनि के प्रमुख चपलता का एक साथ निबोह करना कुछन पूर्व पेचेवर कलाकार के बिने ही संभव है। माण्डवर्ष (राजस्थान में) यह कला पूरे जोर के साथ विकसित हुई। जोधपुर के निकट बणों से इस कला को बने के रूप में पोषित किने कई कुटुम्ब बने हुए हैं। यही लीप समय-समय पर दूर-दूर तक

यात्रा करते हैं। राजपूत राजाधर्मा और जमींदारों ने अपनी समृद्धि के सुनों में इन्हें बूझ घास्य दिया। मुजरात काठियावाड़ और मालवा में भी उन्हें यथोचित संरक्षण मिलता था। धाक भी लोक-मनोरंजन के साधनों के पुनरुद्धार के इस काम में कठपुतली के खेल की पुनः प्रतिष्ठा प्रदान करना राष्ट्र के भिन्न गौरव का विषय होया। इस दृष्टि से भारत के सूचना और प्रसार विभाग ने कुँवरसिंह पर एक खेल तैयार करवाया है 'जो कुँवरसिंह की टोक' के नाम से प्रसिद्ध है। यह प्रसंस्नीय प्रयोग है इसी माध्यम से और भी बटुनाएँ प्रस्तुत करना अपेक्षित है।





## २ छाया नाट्य

छाया का अपना प्रयोग मौखिक है। उसमें रहस्यात्मकता और धारक्य मानना का स्पर्श निहित है। कल्पना और गल्प दोनों वही एक नाम धारते हैं।

छाया-नाट्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भारत चीन और दक्षिणपूर्वी एशिया में यह कला बड़ी धपन चरमात्कार पर पहुँच चुकी थी। इस में बात सिध्द के लिए प्रबुद्ध 'टॉय विवेटर' के समानास्तर ही इस माध्यम का विकास हुआ। भारतवर्ष में छाया-नाट्य लोगों के मनोरंजन का माध्यम बनकर स्थायी महत्त्व की वस्तु बन गया ही किन्तु उसने निकटवर्ती देशों को भी प्रभावित किया है। मलाबार और घाघर के गाँवों में इसके खेल आज भी उत्तुङ्गता से देख जाते हैं। मलाबार में इसे 'पावाकुवू' के नाम से पुकारते हैं। तामिसनाड में भी इसका पर्याप्त प्रचार है।

छाया-नाट्य लोगों का अपना मनोरंजन है। घाघर मलाबार और तामिस नाड में इसका खेल करने वाले हम प्रायः गाँव-गाँव घूमा करते हैं। पौराणिक पात्रों के आचार पर कलाओं का चित्रचित्रा बैठ कर नाटक प्रस्तुत करना इन लोगों के लिए सहज विषय है। तामिसनाड में कम्बन रामायण में पाठ किया जाता है। यहाँ छाया-नाट्य के विषय देवता राक्षस और पुराणों के प्रसिद्ध चरित्र हैं।

छाया-नाट्य आरम्भ करने के पूर्व गाँव की दो बस्तियों पर एक सकेर कपड़ा लान दिया जाता है। यह आधोवर्ग प्रायः गाँव के बाहर किसी बलाघव या मन्दिर के निकट अथवा गारिकेल या ठाड़ वृक्ष की पृष्ठभूमि लेकर किया जाता है। पट के पृष्ठ में कुछ दूरी पर दीपक प्रस्थित किये जाते हैं। नाट्य का आरम्भ करने के पूर्व दर्शकों की ओर अभ्यकार कर दिया जाता है। पट पर दीपकों के प्रकाश के सहारे चमड़े या काठ की बनी हुई आकृतियों की छायाएँ संवर्धित की जाती हैं। ज्यों ही छाया-नाट्य शुरू होता है पट के निकट बैठे दर्शकचक्रवर्त्त संवाद आरम्भ कर देते हैं। आकृतियाँ संवर्धित करने वाला मुखबार पर्व के पीछे इस तरह बैठता है कि उसकी छाया पट पर नहीं आने पाती। आकृतियों की संवर्धित करते समय वह भी कभी-कभी पृष्ठ से ही संवाद बोलता है। इस के मुख्य गायक दर्शकों के सामने पट के पीछे बैठे अपनी आवाज में कथा-पाठ करते हैं। इस तरह छाया-नाट्य भूमिका से आरम्भ होते हैं।

छाया-नाट्य की कला ने बड़ी मलाबार, स्वाम और इण्डोनेशिया के अनेक प्राकृतिक नृत्यों को प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए इस माध्यम से रामलीला को अनुनात्म रूप में प्रस्तुत कर प्रयोग की सफल बनाया है। जावा और बाली द्वीपों के लोगों पर प्रभाव का आरोप अधिक स्पष्ट है। जावा के छाया-नाट्यों की अधिकतर कथाएँ भारतीय हैं। इसे वहाँ 'नार्दम' या नार्दम' कहते हैं। राम और अर्जुन वहाँ के मुख्य एवं प्रिय पात्र हैं। चीन में छाया-नाट्यों का चित्र अधिक अच्छी तरह विकसित हुआ है। चीन को इसे दूर तक से आने का

शेष भी प्राप्त है। वहाँ के लोगों का यह प्रिय मनोरंजन है। लगभग पन्नीस वर्ष पूर्व से एक अमेरिकी स्त्री पामिल बेन्टन इस माध्यम का प्रयोग अमेरिका में करती आ रही है। उसने अनेक प्रयोग किये हैं। चीन से यह आकृतियाँ के प्रदर्शन की यह कला सन् १९२१ में लेकर आयी थी। उसकी आकृतियाँ और प्रदर्शन का रूप भारतीय और चीनी-जैसा है। अतः छायानाट्य का नाम अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व है।

इतना होते हुए भी छायानाट्य पूर्णतया लोकवर्गी है। ग्रामीण जीवन से उसका प्रभाव घटूट है। लोगों के इतने निकट होने के कारण यह सैली किसी की परिष्कृत बाह्य शायन के प्रभाव से अप्रति है। यह धर्मिक संभव है कि लोगों की भावनाओं से उसका सम्बन्ध होने के कारण छायानाट्य सम्बन्धी प्रयोग सफल होंगे।



## ३ रास

रासरीखा का रंगमंच भव्यतः साधारण और सरल होता है। ऊँचे लकड़ या बबूले पर बाहर बिछा ही जाती है। जमी पर अभिनेता घा बाते हैं। जनता बाहों और बेर कर बैठ जाती है। एक ओर स्त्री और दूसरी ओर पुरुष। राधा कृष्ण और गणियों के पदार्पण करते ही जनता उठकर उनका अभिनन्दन करती है। मोठ वरच-स्वरी का शोध पड़ते हैं। राधा और कृष्ण काठ की बनी पड़ेदार कुर्सी पर बिराजमान होते हैं और माथी पाठ धारण हा जाता है। जिसमें जयदेव के बीर-गोविन्द वल्लभाचार्य और हितहरिचंद आदि के स्तोत्रों से वन्दना होती है। इसके बाद एक सड़ी कृष्ण से कहती है—'उस को धन्य हैं गयो मय आप पधारें। कृष्ण उन्हें होकर उभिका जी से निवेदन करते हैं—

राधे रूप उजालरि स्वाम कविनी कृपा की कोर।  
आगे कृष्ण फिर निवेदन करते हैं —

रसिकजन राजधानी महाराणी कृपा करि हूँते ।  
मन मोहत राधे सेते,  
बलौ बने सब मन की ओर  
करिए कृपा की कोर,  
राधा मानकुमारी ।

राधा— मन्त्रिद्वार मोहन मुकुट बिहारी ।  
कृष्ण— जसिये समय मन की ओर की मय प्रथम पिहारी ।  
बोसत बाठक ओर धूती धति पुनबारी ॥  
राधा— मैं न बजुं मन की ओर तु नटपट विरबारी ।  
(पार्श्व-कृष्ण प्रयवान की बज)  
तुम प्रीतम बिते ओर उमटी रीत तुम्हारी ।  
कृष्ण— हा हा काह कहावत ओर, तुम बिते ओर मिहारी ।  
निरखी कृपा की कोर तुम राधा प्यारी ।  
हज बनितन सिध्दारी, तुम मोती जायी ।

इसके बाद कभी राधा-कृष्ण का हज नृत्य होता या फिर सामूहिक नृत्य होता जिसमें राधा कृष्ण गोपियाँ और बाप शामिल होते हैं। इस प्रकार नृत्य सामन और कम्पोज़र के साथ रासरीखा चलती रहती है। अन्त में कृष्ण मृन्दावन की महिमा का वर्णन करते हैं—

राज-पाद को नार्हि करैया, सीढ़ि कमरिया बाप बरैया ।  
रज विमान पर नार्हि चढ़ैया, लकड़ पीठ पर नार्हि चढ़ैया ।  
पावन पावन नूने डोलो सब रज सब कीड नार्हि ।  
को रज बरस रह्यो सब बाही या को वरसन धी कसु नार्हि ।

—साहित्यकार, जयसत १९२६ सावर प्रमुक्त ।

## ४ राजा हरिश्चन्द्र माच का अश

(रंगस जोवना)

भगी सत का राका सत की रागी सत की बीवी पासमान में तानी ।  
भगी सत का पवन सत का पानी सत की राका वोसते पानी ॥१॥ भगी सत का  
सूरज सत का चन्दा सत का म्याक बेसमी खानी । सत के बंस बलीस बने के सत  
की जवान बाठ है छापी । भगी सत के काज बड़ सीस बने के सत के नास को  
बनव उमारी ॥

(बोल राका हरिश्चन्द्र को)

(रंगस छोटी)

सतवासी हरिश्चन्द्र धामे राजा सतवासी हरिश्चन्द्र । ऐका । किछ दुइ गमपत  
ने सुमय मिट जाव मन को सन्ध ॥ सरमस माता तुम्हें ममाता बाप बड़ा को छंद ॥  
साउलोचनी मार हमारी रहे मन में धानन्द ॥ सुन्दर सूरत बड़ी है सीमा मजर  
करी सब बन्ध ॥२॥ पूरी समोस्या में राज हमारा तपसा सूरज बन्ध । सतपुत्र के  
सतवासी राजा सुन सुत मूरख बंध ॥३॥ नाम मिया से निरमल होवे कट जावे  
सब कर । इन्ह लोक में मान बिन्होंका छपी हुए सब मय ॥४॥

(बोल तारालोचनी को)

(रंगस दोहरी)

हूँ तो म्हारे तारालोचनी मार । सत को कपे छनी बंधार ॥ टेक ॥ पति  
हमारा सतवासी हरिश्चन्द्र सत की बाँधी मार । सत बरम की नाब बलाके बतरपा  
कम्हर मार ॥ १ ॥ लूँ तो सीखी सीखी हज मारे सी नर नरक निहार । सतजग में सतवासी  
राजा हुआ मुसक में छार ॥ २ ॥ मूक को मोहन मिल जावे बुझिया पड़े हमार ।  
तन मन मन सीखी हम बेसमी हेड़ो छिर को मार ॥ ३ ॥ पति नहीं परमेस्वर म्हारा  
दिन में लेखी मार । मित क सेवा कपे बंधे रलो तुम्हारी मार ॥ ४ ॥

(बोल ब्रूत को)

धायारे बरमराज का ब्रूत देखने धायारे ॥ टेक ॥ ब्रूकय करने सतवासी  
राजा किन क्या कारा । किन हूँ नावा ॥ १ ॥ धायारे ॥ परम पत्र में नाम लिखावा  
पत्नी हूँ बैकुंठ पीड़वावा ॥ सग बीरसी जिहे भुमवावा ॥ धायार ॥ ३ ॥ ऊपर  
से बुरज की मार लगावा । बर मुँदी पानी पीठावा । धायारे ॥ ४ ॥ जहाँ एठ होव  
वहाँ हम जावा । जाकर ब्रूकय राज उठावा ॥ धायार परमराज वा ॥ ५ ॥

(बोल तारालोचनी को)

## (रंगत झकहरी)

धत्री या बीर पराई वो दिन बिलनी ने पाछी बई बीरो ॥ टेक ॥ कर कटार बिलस लो बई फिर नहीं इस पर जोर । क्या करो बाइली खाली देखो ठिकाना और ॥ १ ॥ कर कटार बह्या छिन्न धार्य धार्य भी भगवान । मेता जुग में राम क्या है, हाथर में क्या कान्हू ॥ २ ॥ हुकूम दिया हाकिम नहीं माने जेब दिया यमदूत । पञ्च हाथ धार्य भर नीना कौन पिता कौन पुत ॥ ३ ॥ जैरा आचना सूरज जायगा जाय पवन और पानी । एक बीर वो नहीं जानेगी गहे बालमुकुन्द प्यानी ॥ ४ ॥

(बीर परमनामकी को)

## (रंगत छोटी)

पूरी भवोप्या बाला म्हाजें कोई सतबाही हरिचन्द्र बठावो ॥ टेक ॥ कच्चा मूठ कुम्हार का लो क्या कच्चा मूठ बठावो । निरमल गौर बर सागर से हीरा बाकी म्हाजें बिठावो । कोई राजा हरिचन्द्र बठावो ॥ १ ॥ बरमराज का दूत देखने कासा मोटा मूठ लो गावो । मिठ उठ सेवा कर बंदपी बम बस केजो हुकूम बठावो ॥ २ ॥ कोई सतबाही हरिचन्द्र बठावो ॥ परमनामकी घरजे करे हैं उसकी का समझावो । परसुवारम के काज मान तुम हुसैन के भर जाने सिचावो ॥ ३ ॥ कोई सतबाही हरिचन्द्र बठावो ॥

## (रंगत झेसा में)

धत्री राजा में लो घाई धापके पास प्यासी बर्जन की ॥ टेक ॥ कुम्हारा तीन लोक में मान भरनी परसन की । म्हाजें समझी गैठ बयोब बढ लिया बरसन की ॥ १ ॥ परबाजे भा कचकी लड़ी हूँ तुनो जी हमारी बाव । क्यों माया में लिपट रमा हो यूँतो ना हाठ की हाव । पुँनी बजा सब मंत्र बुना दिया नव कुँवरी बाँधी पाव । कस्य राम कासो बस कीनी या बँडो टिपाये माव ॥ २ ॥ हम राजा झनै उठ बोझ्या क्यों छोड़ी जी परबाद । परमनामकी पस पल रोने बस्या मवा बस्यी बिरजार ॥ ३ ॥ राजा में लो घाई धापके पास ॥

(बीर परमनामकी को)

## (रंगत झकहरी)

धत्री बीने पक्ष मायनी बा । गिर बासक मेरो जे बवो । देव लोक पाठाव में हो राजा सत्य बकाने मोठ । या कारण हम धाबिया लो कई बिपू बल रही मोठ ॥ १ ॥ धत्री बीने ॥

(बीर राजा हरिचन्द्र)

## (रंगत झकहरी)

भरे म्हाजें म्हाजें धपाही मुन्बर कौन उबी धूरी बाव के ॥ टेक ॥ बीर बीर

गुस्सर कुछ बोली बोझा के सब होय । बिना मित्रे दूसरे के दिल की क्या जानेवा कोय ।  
भरे झारा महल ॥ १ ॥

( बोल नागनी की )

—०—

कोड़ी धिल बिछड़ा पड़वा लो राजा तुम्हीं दिलावन द्वार । उठ राजा क्यों रैर  
सवाई नवकुनीमणी हुलकार ॥ २ ॥

( बोल राजा को )

—०—

बड़ी बोल हल को खाने मैं हूँ बूत सपान । भर निम्ना में जमक उठाई दुःख  
कुछ तुल तां काग ॥

( बोल नागनी की )

—०—

हल जोड़ भरजी कल लो राजा लठ का नाप चुकाय । इतनी दुष्प पस्त तय  
बाँरी झूले बूँदक मोड़ाव ॥ २ ॥

( बोल राजा को )

—०—

बल माली लो बल हल देवां तल बाँयो लो तैवार । रैर छोड़ परवेस चिरांवा  
सत्य कहूँ सतकार ॥ भरे झारा महल मलाड़ी ॥ १ ॥

( बोल नागनी की )

—०—

छाड़ी छार्प कदम के नीचे पिपू धूला वा मुख सेव । बाँरी पिर बाझक भुं नी पयो  
झिर पयो सूरज सेव ॥ ४ ॥

( बोल राजा की )

—०—

सेप बाग पाठास की लो बा को बन्धा सरकी रूप । सच कहूँ लो पयो लो  
कहाँ है हम सठबाँरी पूव ॥ ३ ॥



# माच की प्रमुख धुन

बीज      पिपुनी हमारा धैता  
 पिपुनी गपारे परदेस  
 सरे आनन कां ली विछावां बी

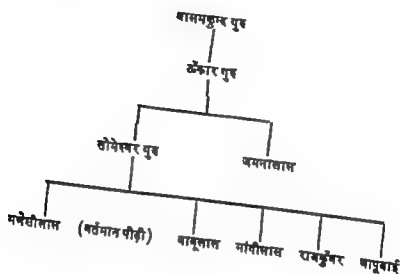
## स्वर-तालिका

नि नि नि नि नि सां सां सां रे सां नी सां सां  
 पि मु ङ बी ङ ह मा ङ रा खै ङ सा ङ  
 व नी व ङ व म ग म प रे सा व म व म  
 पि मु ङ ङ बी ह मा ङ ङ रा ङ पि मु नी व  
 रे रे रे रे म रे व म प प प प  
 वा ङ ङ रे ङ ङ प र रे ङ ङ स  
 सा म रे सा रे सा नी व नी, व प व प  
 म रे ङ वा ङ ङ व म ङ ङ का ङ ङ  
 प व म प म प व म व रे सा रे  
 ङ ङ बी ङ ङ बि छा नां ङ ङ ङ ङ  
 सा सा सा सा  
 वा ङ ङ ङ

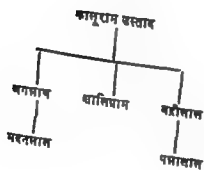


# ५ बालमुकुन्द गुरु और कालूराम उस्ताद की वंश-तालिका

(१)



(२)





# ६ चन्द्रसखी रचित गीति-नाट्य

(पृष्ठभूमि)

गङ्ग मञ्जरा से जमी बूझरी  
बिहरावन से छाई, मेरा राम ।  
छाई ए साँवरियो मारण  
रोक लियो हरे राम ॥

(छन्द)

कड़ी रे पूजरी लकी रे गुबालन  
छड़ी रे ए बँहरावन नार ।  
महिङ्गी रो एक रहिङ्गी रो  
जान ज हे प्यासी हरे राम ॥

(गोली)

जान ज लालू जान ज पैड़ा  
जान ज पिरी बुँहाटी मेरा नाम ।  
महिङ्गी रो एक रहिङ्गी रो  
जान ज ना बेनी हरे राम ॥

(छन्द)

जान ज लालू जान ज पैड़ा  
जान ज पिरी बुँहाटी मेरा नाम ।  
महिङ्गी रो एक रहिङ्गी रो  
जान ज ना छोड़ी हरे राम ॥

। (भावात्मक नृत्य)

मटकी भी छोड़ी कान्हो महिङ्गी मूँडानी  
सावन भीम लगायो मेरा राम ।  
ईदुभी ए क ईदुभी जल में  
बुँहाय बीनी हरे राम ॥  
हार हवक लियो नीर सवक लियो  
मोतिवन की लड़ लोड़ी मेरा राम ।  
बोरे ए पूँजे पर बाँवरो  
मन भीग्यो हरे राम ॥

(बुद्ध परिचर्तन)

बिदरावन सैं भाव गूजरी  
 मङ्ग गोकुल में धार्ई, मेरा राम ।  
 स्याई रे नैदनी की पोली  
 धोममा हरे राम ॥

(मापी)

मुम सुल ए म्हारी मात बसोवा  
 सुम नैदनी की राणी मेरा राम ।  
 ऐमो ए उदमाछो कान्हो  
 के बायो हरे राम ॥

(मघोरा)

कईं बारो लोइयो कईं बारो काइधो  
 कईं बारो करपो उमाइो मेरा राम ।  
 तू क्यूँ ए गूजर की दे छै,  
 धोममा हरे राम ॥

(बोली)

मटकी भी फोड़ी कान्हो महिइो म्हुँकयो  
 मानन भोम लभायो मेरा राम ।  
 ईहुंभी ए क ईहुंभी बल में  
 बुझाय बीनी हरे राम ॥  
 मोरे ए पूँच पर सौंढरो  
 गल बीन्यो हरे राम ॥

(मघोरा)

पर जा ए गूजरी पर जा बुवालय  
 बर जा ए बिदरावन मार ।  
 घावे ए कानूझा धुंकी  
 धोममो हरे राम ॥

(बुद्ध परिचर्तन)

माँझ पड़ी दिन घायप लाम्बी  
 कान्ह, बऊ में घायो मेरा राम ॥  
 (मघोरा)  
 धार्ई रे कानूझा लेरा  
 धोममा, हरे राम ।

## सौकषर्मी नाट्यपरम्परा

घर तेर मासन घर तेरे महिड़ी  
घर तेरे पिरल मनेरी मरा ताल ।

जसो रे पिलसाया मासन  
क्यू प्राप्ति हरे राम ॥

घर तेरे राधा घर तेरे दकमन  
घर तेर सीता सी नार, मरा ताल ।

ऐसी रे ममतानी गुजरी  
क्यू खेड़ी हरे राम ॥

(इच्छ)

बिन्दुराजन की कुँज गतिन में  
बैठयो घेनु बराबू मोरा माय ।

बैठी ए माया के ठोकर,  
क्यू मारी हरे राम ॥

(कवि बचन)

भानुसखी भव बाल कुण्ड छवि  
हरन निरख मुन याबू मेरा राम ।

झूठी ए मुबल्ली ख्याई,  
घोसना हरे राम ॥



## ७ प्रकाशित स्याल

श्री अमरचंद नाहुटा द्वारा प्रस्तुत सूची ( मोकनना भाग १ संक को मनु १९१४ मे उद्भूत )

( क ) अमर जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपस्थित —

१ अमरचिन्मयी को बड़ी श्याम मानीलाल गदाराय प्रतापजी सत्तारा वाला ।  
 २ अमरचिन्मयी रानी को श्याम लजीर नली बंजरकर प्रेम बंई । १ बरत  
 पुने का श्याम यमेश बर सासा बनीपर बुझानी धामरा । ४ बरत गुलाब का  
 श्याम पंछारीलाल गंवराम ईश्वरलाल बुकसेमर, जयपुर । ४ ( राजा ) बरतचिह्न  
 का श्याम ( फुसाई बरतचिह्न को श्याम ) धादप हिन्दू पुस्तकालय मयुर । ६  
 राजा बरतचिह्न का श्याम पं० बनीपरगर्वा विद्यालय । ७ बीमजी धामसदे का बड़ा  
 श्याम सहायुक्त मयबानलाल नीमच निबानी जमुना प्रिटिण बर्मा मयुर । ८  
 बीमजी धामसदे का श्याम श्याम कानी प्रेम मयुर । ९ बीमजी धामसदे का  
 श्याम नानुलाल भीपर गर्वा विद्यालय । १ बीमजी धामसदे का श्याम ज्ञान-  
 धामर प्रेम बंई । ११ बीमजी का श्याम मंजीलाल ( धावे १७६२ ) हरिसल  
 मन महापुनकर, बंई । १२ बीमजी राजा का श्याम धादप हिन्दू पुस्तकालय  
 मयुर । १३ बीमजी राजा का श्याम हिन्दी पुस्तकालय मयुर । १४ बरत  
 बंई राजा को श्याम नानुराम राजा ज्ञानमाय प्रेम बंई । १५ बरतचिह्न को  
 श्याम बरि लज्जीलाल कुचामनी धादप हिन्दू पुस्तकालय मयुर । १६ बंई  
 पतिहारी का श्याम ईश्वरलाल बुकसेमर, जयपुर । १७ बरत बंई को श्याम  
 नानुराम बिड़वाई वाला ज्ञानधामर प्रेम बंई । १८ बरत कदाली को श्याम  
 नानुराम बिड़वाई वाला मंजीलाल बुकसेमर बंई । १९ बरत बंई का श्याम  
 नानुराम बिड़वाई वाला श्याम काशी प्रेम मयुर । १९ बरतचिह्न का श्याम तेज  
 बरि बीरा विद्यालाल जैसमेर । २० बीमजी मंजीलाल का श्याम तेज बरि बीरा  
 विद्यालाल जैसमेर । २१ बीमजी मंजीलाल का श्याम तेज बरि विद्यालाल तेज  
 मन जैसमेर । २२ बरतचिह्न का श्याम ईश्वरलाल बुकसेमर, जयपुर । २३ बरत-  
 मयूर का श्याम सन्तुला हिन्दी पुस्तकालय मयुर । २४ का गी का बरत  
 श्याम पंछारीलाल गंवराम नीमच हिन्दी पुस्तकालय मयुर । २५ बुकचि का  
 श्याम नानुराम ज्ञानमाय प्रेम बंई । २६ बरत बीमजी का श्याम नानु ईश्वरलाल  
 बुकसेमर, जयपुर । २७ बरतका का श्याम नानुराम राजा ईश्वरलाल बुकसेमर,  
 जयपुर । २८ बीमजी नानुरामी श्याम ईश्वरलाल बुकसेमर जयपुर । ३० रानी  
 निहामदे धीर कुंवर मुलतान का श्याम पं० विद्यालाल बाब रामचंद नीमच ।  
 ३१ रानी निहामदे धीर कुंवर मुलतान का श्याम पं० विद्यालाल ईश्वरलाल बुक-  
 सेमर, जयपुर । ३२ गदप का गेस तेज बरि ज्ञानधामर मंजीलाल जैसमेर ।  
 ३३ बरतका रानी का श्याम या श्याम धादप राजा को मयबानलाल हिन्दी पुस्त-  
 कालय मयुर । ३४ बरत बीमजी का श्याम पंछारीलाल गंवराम नीमच ईश्वरलाल

बकसेसर, जयपुर । ३५ पूरण भगत का क्याल । ३६ पूरणभगत को क्याल हरमद  
राम ईश्वरभास बुकसेसर जयपुर । ३७ पूरणभगत का मारवाड़ी लेल पं० बंशीधर  
रामा प्र० बंशीधर रामा बंशीधरामा । ३८ प्रथमीर राठोड़ पाकूबी राठोड़ मारवाड़ी  
लेल पं० बंशीधर रामा पं० बंशीधर रामा बंशीधरामा । ३९ बूड़ा बनडा का क्याल,  
जयप्राय उपाध्याय पं० भीमसामाजमज जयप्राय उपाध्याय कडकका बीर जयमेर ।  
४० बूड़ा बातम का क्याल नंदराम ईश्वरभास बुकसेसर, जयपुर । ४१ पमियारे  
मारे का क्याल पंछारी नाम नंदराम बंहीपामाज ह्यम प्रेस भागरा । ४२ मातदे  
हाडी पानी को क्याल बजीर ठसी जालतागर प्रेस बंबई । ४३ मूलत महुंदरे का  
लेल लेज कवि ( शाकहीनी शाहण ) जयप्राय हुजमचंद वस्मा जयसमेर । ४४  
मोरप्यज कवी क्याल प्रेमसुर ज्ञानसागर प्रेस बंबई । ४५ मोरप्यज को क्याल बड़ा  
पं० किशनभास नसीराबाद ईश्वरभास बुकसेसर, जयपुर । ४६ राजा रिसालू को  
क्याल सामीराम ज्ञानसागर प्रेस, बंबई । ४७ राजा रिसालू नौपदे का क्याल,  
सासीराम ईश्वरभास बुकसेसर, जयपुर । ४८ राजा रिसालू नौपदे को क्याल सामी-  
राम हिन्दी पुस्तकालय मयुरा । ४९ लैला मजनू पाक मुहम्मद का क्याल नानूभास,  
क्याल काशी प्रेस मयुरा । ५० छीमो सठवींटी का क्याल पं० किशनभास मुस्तानमस  
प्रिंटिंग प्रेस ५१ सत्यनारायण जय कथा मारवाड़ी लल पं० बंशीधर, प्र० बंशीधर  
बीरबाना । ५२ जयप्राय जयप्राय बीरहरम क्याल नानभास राजा ५३ छील कबर  
नुरबुह छालीमा का क्याल हुरीकरम जिय हुरिपसार भावीरब बंबई । ५४ गुलदान  
मरकज भाठ का क्याल बीरली ठसी ईश्वरभास बुकसेसर जयपुर । ५५ सूरज  
कुंवर का क्याल फतहचंद ईश्वरभास बुकसेसर जयपुर । ५६ (सत्यवाही राजा)  
हरिचंद का बड़ा क्याल पं० किशनभास मुस्तानमस प्रिंटिंग प्रेस नीमच । ५७  
(सत्यवाही राजा) हरिचंद का बड़ा क्याल पं० किशनभास क्याल काशी प्रेस मयुरा  
५८ हीर रांछे का क्याल नानूभास ईश्वरभास बुकसेसर, जयपुर । ५९ हीर रांछा  
का क्याल नानूभास राजा राम प्रेस जाटन स्ट्रीट कसकता ।

( ख ) खत्री श्रीकमलचंद, जोधपुर द्वारा प्रकाशित क्यालों की सूची —

१ जयनरम मरवरी क्याल । २ जयप्राय राठोड़ क्याल । ३ जयसदर  
की क्याल । ४ जालादावी की क्याल । ५ जलपुग की क्याल । ६ काकी जेदूता  
की क्याल । ७ केसरसिंह की क्याल । ८ छीमजी जयमदे की क्याल । ९ नीला  
बीरान की क्याल । १० गोलीचंद की क्याल । ११ चंद मलयागिरि की क्याल ।  
१२ चंदसेन की क्याल । १३ छोटा कंज की क्याल । १४ लैला बिसवान की क्याल  
१५ लैला पमिहारी की क्याल । १६ जयचंद कंकाणी की क्याल । १७ जोहरी का  
क्याल । १८ जयप्राय की क्याल । १९ बीमामास की क्याल । २० देवर नीजाई  
की क्याल । २१ जो गोरी के बातम की क्याल । २२ ध्रुव भक्त की क्याल । २३  
नचद बीजाई की क्याल । २४ नरसी महेता की क्याल । २५ नापजी नागवंदी की  
क्याल । २६ मिहानदे गुलदान की क्याल । २७ मिहानदे मारवाड़ी की क्याल ।  
२८ मोटेकी मारवाड़ी की क्याल । २९ पद्मा बीरमदे की क्याल । ३० पारस पी-  
ठावर की क्याल । ३१ पुष्पीराज की क्याल । ३२ प्रह्लाद चरित की क्याल ।  
३३ बनजारा की क्याल । ३४ बननीमा की क्याल । ३५ बूड़ा बातम की क्याल

३६ भूमिका मटिधारण को क्याल । ३७ (राजा) भरवरी को क्याल । ३८ यीरा मंगल का क्याल । ३९ रतन कुंवर को क्याल । ४० रामजीता को क्याल । ४१ (राज) रिद्धमल को क्याल । ४२ (राजा) गिमांन को क्याल । ४३ गिमांन जालवरे का क्याल । ४४ विजयमिथ को क्याल । ४५ विजयमिथ का क्याल । ४६ भवत कुमार को क्याल । ४७ सुखदुःख लक्ष्मिना को क्याल । ४८ सूरजदेवर को क्याल । ४९ मेड सेठानी को क्याल । ५० योमह भवजारे को क्याल । ५१ शारठ बीता को क्याल । ५२ राजा हरिचंद्र को क्याल । ५३ हीर गता को क्याल ।

( ग ) पंडित बदीधर डीडवाना निवासी रचित और प० श्रीधर सिवसाग, जालसागर छापाखाना किन्तनगढ़ द्वारा प्रकाशित (हमारे सपह सूची के प्रतिरिक्त) —

१ धनरमिह को क्याल । २ धनरमिह हाड़ी रानी का क्याल । ३ मोतीचंद को क्याल । ४ मोतीचंद का क्याल ( राजावाटी रंघत ) ५ चंद पक्षिमिथ को क्याल । ६ जयदेव कंवासी को क्याल । ७ राजाजी का क्याल ( राजाजाल ) ८ बयाराम भाइजी को क्याल । ९ बयाराम भक्ति को क्याल । १० नरमी मरुत को क्याल । ११ मिहानंद मुनजाल को क्याल । १२ पच पूजाराजी को क्याल । १३ प्रचवीर राठोड़ पावुजी को क्याल । १४ बगदावत भाग का क्याल । १५ राठोड़ पावुजी का क्याल । १६ रामदेवजी का क्याल । १७ रिधानुताम का क्याल । १८ रामजी मंगल का क्याल । १९ रामजी स्वर्णर का क्याल । २० रामजी हल का क्याल । २१ बीरवर छाट सेठानी का क्याल । २२ छाटवार का क्याल (भावरमन) । २३ छत्री हमरुंदर का क्याल । २४ हमरुंदर भक्ति का क्याल ।

( घ ) सेमराज भी कृष्णदास, श्री बैकटेदेवर स्टीम प्रेस, बबई द्वारा प्रकाशित (हमारे सपह के प्रतिरिक्त) —

१ अष्टगुरी को क्याल । २ आचल धनवती का क्याल । ३ आचलजी को क्याल । ४ हीर सभा का क्याल । ५ इरवदाज नववादिन का क्याल । ६ उगा धनिलाल का क्याल । ७ निवा धामन का क्याल । ८ मुनबहार पावनी का क्याल । ९ मोतीचंद का क्याल ( मोतीराम ) १० मोतीचंद का क्याल ( गहारा राम ) । ११ बरदा बीन का क्याल । १२ बरदाजी का क्याल । १३ बरदाजी का क्याल । १४ बीनकुंदर चौर कुंवर का क्याल । १५ बीन विजय का क्याल । १६ बीन पक्षिमिथ का क्याल । १७ छोटे चंद का क्याल । १८ जयदेव कंवासी का क्याल । १९ जयन कता का क्याल । २० जीहुर का क्याल । २१ डोगी बयानी का क्याल । २२ डोगी मंगल का क्याल । २३ डोगी मुनजाल निहानंद का क्याल । २४ बयाराम भाइजी का क्याल । २५ पुजा भाइजी का क्याल । २६ मुकजी का क्याल । २७ पचा छाटवारी का क्याल । २८ पचा बीरमरी का क्याल । २९ पाट गाह गाहवारी का क्याल । ३० गुरगम मंगल का क्याल । ३१ कुम्भीगढ़ का क्याल । ३२ पंडित सेठानी का क्याल । ३३ कुंवर कुंवर का क्याल ।

७ क्यास घासाडाबी पक्कला । ८ क्यास मिहासवे । ९ क्यास रिछामू मोपरे ।  
१० क्यास हीर रांसे का । ११ क्यास छंथा पनहारी का । १२ क्यास  
समीकर का ।

( ४ ) रामसास नोपाणी, १७ काटन स्ट्रीट, कसकरा द्वारा प्रकाशित  
(हमारे प्रतिरिक्त) —

१ ममसदार का क्यास । २ इग्न सभा का क्यास । ३ हीर रांसा का  
क्यास । ४ जगदेव कंदामी का क्यास । ५ जन्मप्रसाप का क्यास । ६ मासवे  
हाड़ी रागी का क्यास । ७ इकीम गरमीनामा का क्यास । ८ बीरमदे सोनपरी का  
क्यास । ९ चंदकंदर फूलकंदर का क्यास । १० राजा भोज भानुमती का क्यास ।  
११ पूरनमस भक्त का क्यास । १२ डानां मरण का क्यास । १३ छोटा कंच  
का क्यास । १४ जुरी लतराबी को क्यास । १५ चढ़वा रंच को क्यास ।  
१६ स्वाम कर्मिजा हनु को क्यास । १७ साहिब तू छप्प को क्यास । १८ छेठ मुनीम  
को क्यास । १९ सहुवादे को क्यास । २० मैना मजनू को क्यास । २१ मदनसेन  
चंदकिरण को क्यास ।

( ५ ) उपरोक्त प्रकाशकों के प्रतिरिक्त —

बाबू बीरचंद नीमच । लोक साहित्य सदन जयपुर । बिघन बुक डिपो मयूर ।  
पुस्तक मंदिर, मयूर । वृषभाय पुस्तकालय जयप्राय हनुमन्चंद कला बैसमेर ।  
फिरोदीनाल सज्जदमल बैसमेर । मंकायम प्रतापजी मखारा जालमा । चिन्ताम  
बिरास जंदाबी बैसमेर । १० जयप्राय उपाध्याय धजमेर । रामनाथरायन बिबही  
कसकरा । भावर्ष हिन्धू पुस्तकालय मयूर । स्वामनाल हीरानाल स्वाम काशी प्रेस  
मयूर । जमना प्रिन्टिंग वर्क्स मयूर इत्यादि-इत्यादि कई प्रकाशक हैं ।



## ८. दिल्ली की रासलीला के सचालकों की परम्परा

महंछ राबोशास

बलुर्गुब

निरंजनशास

रघुबररायान

अपघाण

मदमीनारायण

(बलमान)

रामनारायण

रघुबररायण

रामनारायण



सकती है। एक तो कुछ घूमने-फिरने वाली नाटक मंडलियों की स्थापना सरकारी पक्ष से ही करे। ये मंडलियाँ देहाती में घूम-घूम कर अच्छे नाटकों का प्रदर्शन करें, रंगमंच इनका भी सीधा-सादा ही नाटकों का रूप भी लोक परम्परा का अनुगामी हो। जहाँ जहाँ ये मंडलियाँ जायेंगी एक नवीन रंगमंच का नमूना देहाती जनता के सामने पेश कर देंगी। उनके अनुकरण में न गिर्द व्यावसायिक मंडलियाँ उनी ढंग के नाटक नेमने लवेंगी बल्कि देहाती में स्थायी रंगमंचों की भी स्थापना होने लगेगी। इन मंडलियों की साम मर में एक बार ट्रेनिंग का भी प्रबन्ध होना चाहिये। दूसरी बात जो सरकार के द्वारा की जा सकती है वह लोक रंगमंच के महोत्सवों का आयोजन। ऐसे महोत्सव अलग-अलग इलाकों में ही तो प्रवृत्त हैं। उत्सवों प्रतियोगिता और पुरस्कार का आयोजन होना चाहिये। बिहार सरकार ने लोक मंडलियों के नाम से घूमने-फिरने वाली नाटक मंडलियों का संगठन किया है, और वर्ष में एक बार प्रादेशिक रंगमंच महोत्सव की भी आयु किया है।

पिछले पन्नीस वर्षों में लोक-नृत्य और लोक-गीत की ओर संस्कृति प्रेमी व्यक्तियों का ध्यान गया है और नगरों में उनका प्रचार भी बहुत कुछ हुआ है। किन्तु लोक-रंगमंच जैसी चीज की स्थापना करने की कोई योजना हमारी नजर में नहीं आई। लोककला की नजर और सभ्य नहीं जाने वाली जनता के सामने रख देना एक बात है और जन जीवन के बीच में उन्हीं न मनोरंजन और उन्हीं की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का आयोजन करना दूसरी बात। साथ से नगरों की ओर शीघ्र ही लिखी उसकी मोड़ी के मात भी लिखे उसकी घण्टी के बीच भी उड़े। क्या वह नहीं हो सकता कि उन गीतों की पीठ उसी घण्टी में बने फले फूले और लोक-जीवन को धारण रख के सराबोर करे ?



१ मध्यप्रदेश के समाज सेवा विभाग ने भी 'कलापथक' नाम से हर जिले में ऐसी मंडलियाँ बनायी हैं।

## १० नौटंकी संगंधी लोककथा

डा० पद्मसिंह शर्मा कमलेश ने नौटंकी के विषय में कुछ जान सीख बालों प्राप्त की हैं। आपका कथन है कि नौटंकी एक प्रेम-कथा है। साधारण रूप में पंजाब की एक लोक कथा इस प्रकार है —

“नौटंकी नाम की एक राजकुमारी थी जो बड़ी ही प्रसिद्ध थी बड़ी छिहम डीप की पद्मिनी। हुआ यह कि एक बार विहार से नौटंकर फूलसिंह नामक युवक न अपनी माँ की से पानी का ठण्डा पानी गहान को पानी बाल को बाल-बाबल और हुक्का भर कर तैयार कराने का बहाना। माँ की का बेबर के कहने का हंग प्रस्ताव न लया और अपने कह दिया कि कौन नौटंकी ब्याह कर ले चाय हो जो ऐसा हुक्म ब्याह हो। मैं तुम्हारी तनका नहीं पाती कि हुक्म बजाने के लिये छोड़ी रहूँ। माँ की के ये बचन युवक की ठीर की उरख लगे और उनमें प्रतिष्ठा की कि नौटंकी ब्याह कर ही कर लौटूँगा। बर से बला ही माँ की को मूल मानुम हुई। उसमें पस्वाचाय किया और समा माँ की। नौटंकी के लान की कठिनाइयों का उस्मख किया पर फूलसिंह बुझलिया रहा। इसका बाप या माई, माता पिता मित्र धारि सजने समझाया पर नौटंकी का बीबाबा फूलसिंह रोके न सका। बी बाजुरियों में मोहरे भर कर वह छोड़े पर नहु कर नग दिया और नौटंकी के बाग में जा पहुँचा। मासिन की निश्चय बेकर अपने बाग में स्वाज पाया और मासिन के बरान स्वयं राजकुमारी नौटंकी के लिये माया सूखे बिस में ब्याहाराय बड़ दिने। मासिन उस हार को बेर से मेकर परी तो नौटंकी काय से धाग-बबूला हा गई। मासिन से बहुत पूछने पर उनमें भय नहीं बजाया और अपने लड़के की बहु को उस हार के लूने का मय दिया। नौटंकी ने हुक्म दिया कि बहु की नामन लाया जाये। मासिन के होय उड़ मय। बाय में नौटंकर उनमें फूलसिंह के छे हाग कहा। प्रमर्ने फूलसिंह स्त्री बनकर महम में गया। स्त्री रूप में फूलसिंह नौटंकी से कम मुन्दर न था। नौटंकी ने उन नहणी बनाकर एक ही सेत्र पर घान का अधिकारी बना दिया। फूलों में सेत्र मजारी गई। दोनों एक साथ मय। बातकीत के बीरान में फूलसिंह ने नौटंकी से कुमारी रहने का कारण पूछा या उसने अपने माय बर न बिनने की सुक्ति ही और इच्छा प्रकट की कि यदि हम दोनों में कोई मर्द हो जाये तो बना ही घानम् की बाय हा। हम पर फूलसिंह ने इष्टदेव की मनाकर यह बरदान माँगने को कहा कि हम में न कोई मर्द हो जाय। नौटंकी ने बैसा ही किया और फूलसिंह यन्त्र के रूप में प्रमुख हा गया। नौटंकी को जब बाल या मूम हुई तब वह बबूलाई पर पद बना हा मजता था। तबसे राजा एक गई। फूलसिंह मिरपार कर लिया रंग और फौजी के मजद पर बड़ाया गया। नौटंकी प्रमीक मित्र मर्दना बय राखर बच-नपम पर धागई। बसे ही इष्टरादों को राजा न बग्न वा हुक्म दिया नौटंकी मर्दना सेत्र उज्जरकर अपने अपनी

सकती है। एक तो कुछ धूमने-फिरने वाली नाटक मंडलियों की स्थापना सरकारी स्तर से ही करे। ये मंडलियाँ देशांतरों में धूम-धूम कर घण्टे नाटकों का प्रदर्शन करें, रंगमंच इनका भी सीधा-साधा ही नाटकों का रूप भी लोक परम्परा का अनुगामी हो। जहाँ जहाँ ये मंडलियाँ जायेंगी एक महीन रंगमंच का समूचा देशांतरी जनता के सामने पेश कर देंगी। उनके आयुर्काल में न सिर्फ व्यावसायिक मंडलियाँ उठी हों के नाटक लेने लगेगी बल्कि देशांतरों में स्थायी रंगमंचों की भी स्थापना होने लगेगी। इन मंडलियों की साम भर में एक बार ट्रेनिंग का भी प्रबन्ध होना चाहिये। दूसरी बात जो सरकार के द्वारा की जा सकती है वह लोक रंगमंच के महोत्सवों का आयोजन। ऐसे महोत्सव अलग-अलग इलाकों में ही हो पायेंगे। उरसवों प्रतिस्पर्धिता और पुरस्कार का आयोजन होना चाहिये। बिहार सरकार ने मोह मंडलियों के नाम से धूमने-फिरने वाली नाटक मंडलियों का संयोजन किया है, और वर्ष में एक बार प्रादेशिक रंगमंच महोत्सव की भी बात किया है।

पिछले पन्नीस वर्षों में लोक-नृत्य और लोक-मंचीय की ओर संस्कृति प्रेमी व्यक्तियों का ध्यान गया है और मंचों में उनका प्रचार भी बहुत कुछ हुआ है। किन्तु मांगदर्शन जैसी चीज की स्थापना करने की कोई योजना हमारी नजर में नहीं आई। साक्षरता की मर और उभर रही जाने वाली जनता के सामने रख देना एक बात है और जन जीवन के बीच में उन्हीं से मनोरंजन और उन्हीं की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का आयोजन करना दूसरी बात। पाँच से नवरी की ओर धीमे धीमे लिखी उसकी घोषी के नाम भी लिखे उसकी बरती के पीछ भी उड़े। क्या यह नहीं हो सकता कि उन चीजों की पीछ उसी बरती में जमे कपे धूम और लोक-जीवन को मानव रख से सजावट करे ?



१. मध्यप्रदेश के समाज सेवा विभाग ने भी 'कलापथक' नाम से हुए जिले में ऐसी मंडलियाँ बनायी हैं।

## १० नौटंकी संबंधी लोककथा

डा० पद्मसिंह सर्मा कमलस न नौटंकी के विषय में कुछ बातें योग्य भाँते प्राप्त की हैं। बापका कहना है कि नौटंकी एक प्रेम-कथा है। धाधार रूप में प्रकाश की एक लोक कथा इस प्रकार है —

“नौटंकी नाम की एक राजकुमारी की जो बैठी ही प्रसिद्ध की बैठी सिंहम द्वीप की पद्मिनी। हुआ यह कि एक बार सिकार से लौटकर फूमसिंह नामक पुष्कल घपनी नामी से पीने का ठगवा पानी मगाने की पानी खाने को दात-बाबल और हुक्का भर कर तैयार करने की कहा। नामी को देवर के कहने का डंग धमका न गया और उसने कह दिया कि कौन नौटंकी ब्याह करु ले जावे हो जो ऐसा हुक्म बताते हो। मैं तुम्हारी ठगवा नहीं पाती कि हुक्म बनाने के नियम नहीं रहें। नामी के ये बचन पुष्कल को ठीर की तरह लगे और उसने प्रतिज्ञा की कि नौटंकी ब्याह कर ही कर लौटूँगा। घर से जाता तो नामी को भूल मानूम हुई। उसने परचाछाप किया और लमा भागी। नौटंकी के जाने की कठिनाहवा का उत्पन्न किया पर फूमसिंह दुःखविश रह्य। इसक बाद सो जाई, माता पिता, मित्र धारि सबल समझाया पर नौटंकी का बीबाना फूमसिंह रोके न सका। दो जुजगियों में दोहरे मर कर वह चौड़े पर लड़ कर बल विषा और नौटंकी के बाग में जा पहुँचा। मामिन को रिश्तत देकर उसने बाग में खान पाया और मामिन के बदल स्वयं राजकुमारी नौटंकी के लिये मामा सूखी बिस में बवाहुरात बड़ बिये। मामिन उस हार को देर से लेकर गई तो नौटंकी कोष से धाय-बदूषा हो गई। मामिन से बहुत पूछने पर उसन मेव नहीं बताया और घपन लड़के की बहू को उस हार के रूपने का खेप दिया। नौटंकी न हुक्म दिया कि बहू को खाने साया पाने। मामिन क हीच उड़ गये। बाग में लौटकर उसन फूमसिंह से सब हालत कहा। अन्तमें फूमसिंह स्त्री बनकर महल में गया। स्त्री रूप में फूमसिंह नौटंकी से कम सुन्दर न बा। नौटंकी ने उसे छोड़ी बनाकर एक ही सेव पर खाने का अधिकारी बना दिया। फूमों से सेव सवाई गई। दोनों एक साथ खोप। बाउचीत के बीछन में फूमसिंह ने नौटंकी से कुमारी रहन का कारण पूछा या उसन घपन योग्य कर न निकले की युक्ति दी और दुष्कल प्रकट की कि यदि हम दोनों में कोई मर्द हो जावे तो क्या ही आनन्द की बात हो। इस पर फूमसिंह ने इच्छक को मनाकर यह वरदान मांगने को कहा कि हम में से कोई मर्द हो जाय। नौटंकी न बैठा ही दिया और फूमसिंह मर्द क रूप में प्रस्तुत हो गया। नौटंकी को अब बात मानूम हुई तब वह चबराई पर लज गया हो खगल पा। खबर राजा तक गई। फूमसिंह मिरकाज कर लिया गया और कौमी के ठक पर बड़ाया गया। नौटंकी प्रेमीक नियम मर्दाना बय एकर बय-स्वयन पर भाई। दैत ही प्रस्थाओं को राजा न बरन का हुक्म दिया नौटंकी मर्दाना बय सज्जकर भान्त यक्षपी

रूप में प्रामाई । उसने जम्माओं को बक्का देकर नीचे गिरा दिया और भंगी उस बार लिये पिता के सामने जाकर कहल लगी कि या तो इसे राधा कौनिये या स्वयं मरने को जयत हो बाइये । राधा को बटी की बात माननी पड़ी । पंडित बुझाकर दोनों की छारी कर दी गई । भूमिहि नौटंकी को लेकर घर आया ।”

इस में गन्धाराम खर्मा गीत की लिखी हुई “संगीत नौटंकी सहकारी एक प्रप्यारा पीछ” को नौटंकीबाज सप्तमी नौटंकी मानते हैं । प्रेम का जो रूप एक लोककथा में उपलब्ध है उसका स्वल्प बहुत कुछ प्रेमाभ्यासकों-सा है ।





रुप में भागई । उसने बाल्मापों को धक्का देकर नीचे गिरा दिया और जंजीर धार लिये पिता के घामने आकर कहने लगी कि या तो इसे जमा कीबिय वा स्वयं मरने को जखत हो जाइय । राजा को बटी की बात माननी पड़ी । पंडित बुलाकर दोनों की धांधी कर दी गई । फुलसिंह नीटकी की सेकर पर बाया ।"

इस में नरसिंह राम धर्मा गौड़ की लिखी हुई "संगीत नीटकी राहुबादी उर्फ मय्यारा धीरत" की नीटकीबाज धरमो नीटकी मानते ह । त्रेक का जो रूप उक्त लोककथा में उपलब्ध है उसका स्वरूप बहुत कुछ प्रेमास्यानकों-सा है ।



